विवाह-विज्ञान

J. R. Chulia

लेखक :—

विद्याभास्कर पं० श्रीकण्ठ शास्त्री एम ए०

व्याकरणाचार्य

जहां सुमति तहं सम्पति नाना।
जहां कुमति तहं विपति निदाना॥

प्रकाशक :—

माधव पुस्तकालय

धर्मधाम १०३ ए, कमलानगर, देहली-७

तृतीयावृत्ति १०००

मुद्रक—धर्मप्रेस कमलानगर देहली

मकर संक्रांति २०२६

T

विषय-सूची

T

दो शब्द

सुखी जीवन का रहस्य

वैसे तो मनुष्य की सभी इच्छाओं एवं व्यापारों का उद्देश्य सुख है—किन्तु विवाह का एकमात्र उद्देश्य तो सुख ही है। किंतु कितने भाग्यशाली दम्पती हैं जिनका गृहजीवन आज वस्तुतः सुखमय है अन्यथा अधिकांश व्यक्तियों के लिये तो वह आकर्षण-विहीन जंजाल बन जाता है और वे उसे एक अवश्यं-वहनीय बोझे के रूप में ढोये चले जाते हैं।

गृहस्थ जीवन की इस नीरसता तथा सुख हीनता का कारण हमारी अपनी ही कुछ भूलें तथा अनुभव शून्यता है। अधिकांश युवक युवतियें विवाह को विषय वासना-प्रवृत्तिका परमिट समझ कर इसमें इतने अन्धाधुन्ध लिप्त हो जाते हैं कि अपने स्वाथ्य और सौन्दर्य के विनाश के साथ गृहस्थ के मूल=पारस्परिक स्नेह और आकर्षण को भी खो देते हैं। हो सकता है विषय सेवन में कुछ समय के लिये उन्हें सुख का आभास हो, परन्तु ऐसे व्यक्ति शीघ्र ही रोगी बनकर मौत की गोद में पहुंच जाते हैं। याद रहे प्रकृति कभी किसी को क्षमा नहीं करती। नई उठती हुई अवस्था के वेग में, नये खून और नये जोश के नशे में आप प्रकृति द्वारा दिए गए दण्ड को शायद तत्काल अनुभव न करें, परन्तु निश्चय ही एक दिन इस नियमोल्लंघन का मूल्य आपको आना पाई चुकाना पड़ेगा।

इसके अतिरिक्त किसी भी वस्तु का अमर्यादित उपभोग उसके विषय में अरुचि और आकर्षण हीनता का कारण बन जाता है। पति पत्नी में उत्पन्न होने वाली ऐसी अरुचि एक ओर पारिवारिक कलह और दूसरी ओर मनुष्य के मार्गभ्रष्ट होनेका साधन बन सकती है। अतः पति पत्नी को अपने प्रेम को चिरस्थायी बनाने के लिये सदा 'संयम' का ध्यान रखना चाहिये।

T

पतियों से—

१—यदि आप चाहते हैं कि आपकी पत्नी सीता और सावित्री हो तो आपको भी एक पत्नीव्रती श्रीराम बनना होगा।

२—पत्नी आपकी सहचरी है, अभिन्न सखा है, दासी नहीं। शास्त्र मर्यादा पूर्वक सब गृह कार्यों में उसकी सम्मति लें और उसके सम्मान का ध्यान रक्खें।

३—नारी स्वभावत: ही प्रेम एवं आत्मसमर्पण की आदर्श प्रतिमा है। अपने हृदय के समस्त प्रेम और विश्वास से आप उसके इन अमूल्य वरदानों को प्राप्त कर सकते हैं।

४—छोटी २ बातें कभी २ बड़े झगड़ों का कारण बन जाती हैं। इसलिए अधिक तर्क वितर्क, नुक्ताचीनी आदि से सदा बचिये कलह के अवसरों को हंसी में टालने का प्रयत्न कीजिये।

५—बालक सर्वथा अबोध नहीं होते। माता पिता की चेष्टा, व्यवहार, बोल चाल आदि का उन पर पूरा असर पड़ता है। अत: उनके सामने ऐसी कोई बात न करें जिसका उन पर दुष्प्रभाव पड़े।

पत्नियों से—

१—विवाह के बाद पतिगृह ही आपका घर है। अत: आपको अपने पति, सास, ससुर, ननद, देवर आदि सबके साथ अत्यन्त प्रेम और मृदुता का व्यवहार करना चाहिये।

२—आप गृहलक्ष्मी हैं। आयानुसार व्यय तथा आड़े वक्त के लिये चार पैसे के संग्रह से ही आप सच्ची लक्ष्मी कहलायेंगी।

३—पर पुरुष दर्शन तथा सम्भाषणादि से सर्वदा दूर रहें।

४—अपने पति के दोष को प्रेम से सुधारने का प्रयत्न कीजिये, निश्चय ही एक दिन आपके प्रेम की विजय होगी।

विवाह विज्ञान

इहैव स्तं मा वियोष्टं पूर्णमायुर्व्यश्नुतम् ।
क्रीडन्तौ पौत्रनप्तृभिर्मोदमानौ स्वे गृहे ॥

(पद्यानुवाद)

गृह आश्रम में मत वियुक्त हो, पूर्ण आयु पाओ सौ वर्ष ।
पुत्र पौत्र संग क्रीड़न करते, अपने घर में बसो सहर्ष ॥

प्रत्येक विवाहार्थी का प्रथम कर्तव्य

मङ्गलमय भगवान् ने मानव जीवन की सार्थकता धर्म अर्थ काम मोक्ष इन चार पदार्थों की उपलब्धि में बतलाई है । समस्त आर्य वाङ्मय एकमात्र इसी सूत्र का ही सांगोपाङ्ग उपबृंहण है। सभी साक्षर जानते हैं कि धर्म और मोक्ष इन दो पदार्थों को जानने के निमित्त तो अनेक धर्मशास्त्र प्रबन्ध ग्रन्थ तथा जैमिनी दर्शन और उपनिषद् गीता तथा व्यास दर्शन जैसी महा महिम गाड़ी भर पुस्तकें विद्यमान हैं। अथच अर्थशास्त्र विषयक भी मनु बृहस्पति कणक, कामन्दक, विदुर और चाणक्य आदि महात्माओं

के बनाये कुछ ग्रंथ उपलब्ध हैं, परन्तु अन्यतम पदार्थ 'काम' प्रतिपादक तो वात्स्यायन प्रणीत एकमात्र सूत्र ही आज उपलब्ध है और दुर्भाग्यवश वह भी अत्यन्त उपेक्षित हेय और बहिष्कृत दशा में। भगवान् कृष्णचन्द्र ने श्रीमुख से श्रीमद्भगवद्गीता में:—

धर्माऽविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ।

अर्थात्—मानव समाज में धर्म से अविरुद्ध=काम मैं हूं—ऐसा कहते हुए 'काम' पदार्थ को अपनी विभूति प्रकट किया है। यह काम समस्त सृष्टि रचनाका एकमात्र आधार है। यही दाम्पत्य जीवन को सुखमय बनाकर आज के रौरव प्रायः घरों को स्वर्ग रूप में परिणत कर सकने की क्षमता रखता है। इसी के विधिवत् सेवन से अन्त में मनुष्य गृहस्थाश्रम के नानाविध अपरिहार्य कटु अनुभवों की पृष्ठ भूमि पर प्रतिष्ठापित स्वाभाविक वैराग्य के बल मोक्ष मार्ग को भी निष्कण्टक बना सकता है।

इस काम पदार्थ के आधार भूत गृहस्थाश्रम का प्रवेश द्वार 'विवाह' है। विवाह क्या है ? क्यों होता है ? किस लिये होता है और कैसे होता है, तथा जिस वर-वधू का विवाह होने जा रहा है उनका एक दूसरे के प्रति क्या कर्तव्य है इत्यादि प्रश्नों का समाधान किये बिना ही दो अनजान—और सर्वथा अनजान—प्राणियों को गृहस्थाश्रम के दायित्वपूर्ण किन्तु अथाह सागर में ढकेल दिया जाता है। बाजे गाजों के तुमुल कोलाहल में, रंग विरंगे वस्त्राभूषणों की चकाचौंध में, स्वादिष्ट मोदकों की मधुरिमा में अथ च राग रंग के कुतूहलपूर्ण वातावरण में, दो अबोध प्राणी ऐसी भूल भुलैया में डाल दिये जाते हैं कि विवाह से पूर्व जान लेने योग्य बातों से ये सर्वथा अपरिचित ही रहते हैं।

T

इसलिये इस बात की अत्यन्त आवश्यकता है कि हमारे देश के वर वधू विवाह बन्धन में बन्धने से पूर्व विवाह संस्कार की इति-कर्तव्यता और उससे होने वाले वैज्ञानिक प्रभावों को समझ कर अपने दायित्व को निभाने की क्षमता प्राप्त करने का प्रयत्न कर सकें। इसी पुनीत उद्देश्य को लेकर हमने यह छोटा किंतु सर्वाङ्ग पूर्ण निबन्ध लिखने का प्रयत्न किया है। विवाहार्थी किंवा विवाहित दम्पती इसे पढ़कर समझकर और तदनुसार अपने आपको योग्य बनाकर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करेंगे तो निःसन्देह वे वेद भगवान् के मङ्गलानुशासन के अनुसार एक दूसरे के जीवन संगी बनकर पूर्ण आयु पर्यन्त गार्हस्थ्य-सुख के भागी बनेंगे।

विश्वव्यापी नैसर्गिक दाम्पत्यभाव

वेद की डिंडिम घोषणा है कि:—*'अग्निसोमात्मकं जगत्'*

अर्थात्—यह समस्त विश्व अग्नि और सोम इन दो तत्त्वों का ही विपरिणाम है।

अग्नि पुरुष तत्त्व का प्रतीक है, और सोम प्रकृति तत्त्व की प्रतिमा है। इन्हीं दो तत्त्वों को सुदूर पश्चिमार्ध के निवासी 'सोल' तथा 'मैटीरियल' के नाम से स्मरण करते हैं और निकट पश्चिम देशवासी 'हकीकत' और 'रतूबत' के नाम से याद करते हैं।

ये दोनों तत्त्व चर अचर और जड़ चेतन सर्वत्र ओत प्रोत होकर किस प्रकार एक दूसरे से मिलने के लिये निरन्तर प्रयत्नशील रहते हैं यह रहस्य विश्व को किसी भी वस्तु का विश्लेषणात्मक अध्ययन करने से विदित हो सकता है।

विशद दृष्टिकोण से देखने पर हम कह सकते हैं कि विवाह=

T

स्त्रीत्व एवं पुरुषत्वयुक्त दो विभिन्न पदार्थों का संयोग—एक प्राकृतिक संस्कार है जिसकी प्रक्रिया समस्त भूमण्डल में नैसर्गिक रूप से विस्तृत है। जगत् के छोटे से छोटे अणु से लेकर बड़े से बड़े पदार्थ का उद्भव इसी प्रक्रिया द्वारा होता है। मानव, पशु, पक्षी आदि की चर्चा ही क्या, वनस्पति औषधि लता आदि उद्भिज्जों का जन्म भी इस स्त्री पुरुष संयोगात्मक प्रक्रिया से ही होता है। मानव पशु पक्षी आदि स्थूल प्राणधारियों का संयोग तो प्रसिद्ध ही है किंतु बहुत कम व्यक्ति इस बात से परिचित होंगे कि सभी प्रकार के फल, अनाज, धान्य, फूल औषधि आदि भी स्त्री पुरुष वनस्पतियों के विवाह अर्थात् संयोग के ही परिणाम हैं। वृक्ष पौदे आदि भी स्त्री और पुरुष भेद से दो प्रकार के होते हैं। रज वीर्य की तरह इनके पराग या पुष्परेणु भिन्न २ प्रकार के होते हैं। ऋतु काल में प्रकृति वायु भ्रमरादि द्वारा उन विभिन्न परमाणुओं को संयुक्त कर गर्भाधान कराती है और तब आगे फलादि उत्पन्न होते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि यह सम्पूर्ण भूमण्डल ही वैवाहिक भाव पर अवलम्बित है। मनुष्यों की शिक्षित से शिक्षित और असभ्य से असभ्य सभी जातियों में यह भिन्न २ प्रकार के रीति रस्मों के बीच सम्पन्न होता है। इस अवसर पर सभी देशों में समान उल्लास और प्रसन्नता देखने को मिलती है। प्रत्येक देश ने अपनी धारणा के अनुसार कुछ ऐसी क्रियाओं और रिवाजों का निर्धारण किया हुआ है जिसे विवाह कहा जाता है।

किंतु आर्य जातिके अतिरिक्त दूसरी जातियों में इस बात की शायद कल्पना भी न की जा सके कि विवाह का सांसारिक सुख के अतिरिक्त अन्य कोई आध्यात्मिक उद्देश्य भी हो सकता है। वहाँ तो विवाह का एक ही उद्देश्य समझा जाता है वह है केवल

T

सांसारिक भोगविलास और उसकी सिद्धि के लिए स्त्री पुरुष का शारीरिक सम्बन्ध=इन्द्रियतृप्ति पर्यन्त दो प्राणियों का स्वल्प कालिक लौकिक सम्बन्ध मात्र ही समझती है। परन्तु भारतीय ऋषियों ने इस संस्कार द्वारा न केवल दो शरीरों का ही सम्मिलन चाहा है किन्तु दम्पति के आत्मा, मन, प्राण, शरीर सभी का एकीभाव ही वैदिक विवाह संस्कार की अपनी विशेषता है। इस का उद्देश्य इन्द्रिय-तृप्ति जैसी तुच्छ वस्तु नहीं, किन्तु आदर्श गार्हस्थ्य धर्म द्वारा मोक्षलाभ करना ही है। आर्य दम्पति समझते हैं कि उन दोनों का (स्त्री पुरुष का) केवल इस जन्म का ही नाता नहीं है किन्तु वे जन्म-जन्मान्तर से एक दूसरे के संगी हैं और सर्वदा रहेंगे। यही,—केवल यही भावना है जिसने अनंत काल से आर्य गृहस्थ को सुदृढ़ और सुखी बनाया है। इसी भावना के वश होकर दो अपरिचित प्राणी—जिन्होंने कभी एक दूसरे को देखा भी नहीं होता, इस पुनीत संस्कार के सम्पन्न हो जाने के अनन्तर एक दूसरे को सदा के लिए आत्म समर्पण कर देते हैं। उनकी आत्माएँ प्रथम मिलन में ही एक दूसरे को इतना स्नेह करने लगती हैं मानो उनका जन्म-जन्मान्तर का सम्बन्ध है। संक्षेप में महर्षियों की दृष्टि में विवाह, सांसारिक सुख प्राप्ति के लिए इस जन्म में किया जाने वाला स्त्री पुरुष का (Contract) ठेका नहीं और न ही सौदा ही, यह तो आत्म-त्याग संयम और आध्यात्मिक भावों का उज्ज्वल आदर्श है।

विवाह की विभिन्न रीतियाँ—

हमने पीछे कहा है कि यह संस्कार भिन्न-भिन्न देशों में भिन्न-भिन्न रीति रस्मों के बीच सम्पन्न होता है। पाठकों के

अवलोकनार्थ हम भिन्न-भिन्न देश, जातियों और मतों में होने वाली एतत्कालीन रीतियों का संक्षेप में दिग्दर्शन कराना उचित समझते हैं—

विलायतः— में ईसाई वर वधू इस अवसर पर किसी चर्च में उपस्थित होते हैं। पादरी के समक्ष वे अपने रूमाल अंगूठी आदि बदलते हैं और उससे बाईबिल सुनते हैं जीवन पर्यन्त भलाई बुराई, अमीरी गरीबी, बीमारी और तन्दुरुस्ती में एक दूसरे से मिलकर रहने, एक दूसरे को प्यार करने और एक दूसरे की खबरगिरी रखने की कसमें खाते हैं। स्त्री के बांएं हाथ की अनामिका अंगुली में छल्ला पहिनाते हुए वर कहता है—'इस छल्ला से तुझे व्याहता हूँ और अपना 'दुनियाबी माल' तुझे देता हूं, बाप बेटे और रूह उलकुद्दस के नाम से'। और इस प्रकार उनकी शादी की रस्म सम्पन्न हो जाती है।

आस्ट्रेलियाः— में वैवाहिक रस्मों में वधू का भाई जलता हुआ मशाल लेकर वर के घर जाता है और वर का भाई वधू के घर पर। इसके अनन्तर उनका विवाह सम्पन्न हो जाता है।

बापर द्वीपः— में शादी के लिए आवश्यक है कि वर, घोर अन्धकारावृत कमरे में छिपी हुई वधू को ढूंढ निकाले। निश्चित समय के अन्दर यदि वह ढूंढ निकाले तो शादी हो जाती है अन्यथा नहीं होती।

बलगेरियाः— में दूल्हा और दुलहिन शादी से पूर्व एक सप्ताह तक अंधेरे कमरे में बन्द कर दिए जाते हैं। इसके बाद दोनों की सम्मति से विवाह सम्पन्न हो जाता है।

जेरुसलमः— में इस अवसर पर वधू की आँखों में पट्टी

बांध दी जाती है और जब तक विवाह की सब रस्में पूरी नहीं हो जातीं तब तक नहीं खोली जाती।

जापान:— में स्त्रियों का सफेद कपड़ा पहिनना अच्छा नहीं समझा जाता, परन्तु शादी के अवसर पर वहां दुलहिन को सफेद वस्त्रों में सजाया जाता है। इन कपड़ों का मतलब होता है कि लड़की अब परकीया हो चुकी है।

मिश्र:— में विवाह की रस्म पूरी होने तक वर वधू एक दूसरे को बिलकुल नहीं देख सकते। इस नियम को पालन करवाने में वहाँ अत्यन्त कठोरता बरती जाती है।

कोर्यक और शबर:— नाम की जातियों में विवाह की रस्म वधू द्वारा बेंत की छड़ी से वरको खूब पीटकर पूर्ण की जाती है। इस मार को वर, विवाहानन्तर सुख की आशा में खुशी-खुशी सहते हैं।

तिब्बत:— में इस अवसर पर वधू को वर का जूठा दूध पिलाया जाता है।

महाशयों में विवाह संस्कार की मिट्टी पलीद

विवाह के इस आलोचनात्मक प्रसंग में आर्यसामाजिक विवाह प्रणाली पर दो शब्द लिखना अप्रासंगिक न होगा।

पिछले दिनों हमें अपने एक मित्र की कन्या के विवाह में उपस्थित होना पड़ा। मित्र महाशय उदारधर्मी थे किसी विशेष धर्म के प्रति उनका आग्रह न था परन्तु वर पक्ष वाले ये कट्टर समाजी विचारों के। फलतः आर्यसमाजी विधि से ही विवाह होना निश्चित हुआ। विवाह कार्य प्रारम्भ हो गया। वरपूजन,

T

मधुपर्क-प्राशन गोदान कन्यादानादि सभी विधियें सामने आ ई।
वे ही मन्त्र थे और लगभग वही सब कुछ जैसा कि सनातन-
पद्धतियों में देखता आ रहा था। रह-रहकर हृदय में यही
विचार उठ रहा था कि गणेश पूजनादि आध्यात्मिक अंश को
निकाल देने के अतिरिक्त आर्यसामाजिक पद्धति में अन्य क्या
विशेषता ? स्वामीजी ने प्रत्येक दिशा में अपनी डेढ़ चावल की
खिचड़ी रांधने का प्रयत्न क्यों किया ? तभी आर्यसमाज पुरोहित
ने किन्हीं मस्तराम जी को ऊँची आवाज से पुकारा और आगे
आने के लिए कहा।मैंने देखा एक लट्ठधारी हट्टा कट्टा नौजवान
बड़ी शीघ्रता से वेदी की ओर लपका जा रहा है। विचारों की
सरणी टूटी; मन यह जानने को उत्सुक हो उठा कि इस सुख
शान्तिमय मांगलिक वातावरण में अचानक क्या उपद्रव उठ
खड़ा हुआ जो ये महाशय लट्ठ लिए भीड़ को चीरते हुए आगे
जा रहे हैं। मैं उत्सुकतावश खड़ा हो गया। कोई विशेष बात नहीं
थी, फेरों की तैयारी होरही थी। रंग विरंगे वस्त्रों में सजी कन्या
आगे खड़ी थी वर उसके पीछे, और इन दोनों के पीछे कंधे पर
पानी का घड़ा संभाले लट्ठधारी मस्तराम। इस दृश्य से हृदय में
बड़ा कुतूहल-सा हुआ और तब तो मेरे अचम्भे का ठिकाना न
रहा जब मैंने देखा कि मस्तराम तो साथ-साथ फेरे भी ले रहा
है। विवाह पढ़ाने वाले आर्यपुरोहित ने जो कि आरम्भ से ही
समस्त वैवाहिक विधियों की व्याख्या करके उपस्थित जनता को
स्वामी दयानन्द का भक्त वना डालने का शिरतोड़ प्रयत्न कर
कर थे—लट्ठधारी मस्तराम के सम्वन्ध में भी कहना आरम्भ
किया—

'सज्जनो ! श्रीस्वामीजी महाराज ने यह विधि सुरक्षा को
ध्यान में रखकर वनाई है। जैसे राजा महाराजाओं के अङ्गरक्षक

होते हैं इसी प्रकार दूल्हा भी चूंकि बारात का राजा होता है इसलिए उसके साथ भी एक दृढ़ांग–लट्ठधारी पुरुष, संरक्षक होना चाहिए जो विवाह में उपद्रव करने वालों का दमन कर सके। कदाचित् हवन की अग्नि वस्त्रादि में न लग जाय, इसी कारण यह पानी का घड़ा साथ उठा रखा है जिससे आवश्यकता पड़ने पर उसे बुझाया जा सके। इसीलिए तो इसका नाम 'दृढ़-पुरुष' रखा गया है'

वर का राजा होना और लट्ठधारी जवान का अंगरक्षक होना किसी अंश तक समझ में आ गया किन्तु राजा साहब के अपने अन्तःपुर में एकान्त सेवन के समय भी 'बाडी गार्ड' महाशय का दाल भात में मूसलचन्द बन जाने को प्रस्तुत होना तो समझ से परे की बात थी।

आग के भय की बात भी खूब कही गई! यदि वास्तव में हवन की अग्नि भड़क ही उठे और ईश्वर न करे मण्डप और शामियाने को छू जाए तो फिर उन लट्ठधारी महाशय का एक छोटा सा पानी का घड़ा उसे कहां तक बुझा पायेगा? हमारा सुझाव है कि इसके लिए तो आर्यसमाजी भाइयों को पहले ही से कुछ माशकी तैनात रखने चाहिएँ तथा म्युनिसिपल कमेटी में सूचना देकर दमकल (Fire Brigade) को तैयार रहने का प्रबंध कर रखना चाहिए जिससे समय पर अग्नि दुर्घटना से रक्षा हो सके। विवाह में उपद्रव मचाने वाले दल को दबाने के लिए भी एकमात्र बेचारा मस्तराम कहां तक सफल हो पाएगा, इसके निमित्त भी पूर्व से ही कोतवाली में 'नुकसेअमन' की रिपार्ट करके पुलिस का एक सशस्त्र दल तैयार रखना चाहिए था। मस्त राम के बाडी-गार्ड होने और उसके लट्ठ तथा पानी का घड़ा उठाने की तुक तो आर्यपुरोहित ने मिला दी परन्तु यह दोनों

T

काम तो एक जगह तैनात मस्तराम भी आवश्यकता पड़ने पर कर सकता था, परंतु भांवरी (फेंरे) लेने के समय भी वर के साथ २ उसके अग्नि परिक्रमा करने से तो आर्यसमाज में एक कन्या का दो व्यक्तियों से विवाहा जाना सिद्ध हो रहा है इस अनर्थ का भी कुछ समाधान है ? हो सकता है आर्यसमाज में नियोग की प्रथा का विधान है अतः भावि उम्मोदवार पति का स्वत्व स्थापन करने के लिए पूर्व से ही यह उपक्रम किया जाता हो।

विवाह कितने हैं ?

विवाह विधि पर विचार करते हुए भगवान् मनु ने भिन्न २ जातियों एवं देशों में होने वाले विवाहों को अष्टविध विवाहों के अन्तर्गत परिगणित किया है। उनके नाम क्रम से ये हैं—

ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथासुरः ।
गान्धर्वो राक्षसश्चव पैशाचश्चाष्टमोधमः ॥ (मनु ३।२१)

अर्थात्—ब्राह्म, दव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गांधर्व, राक्षस और पैशाच ये आठ प्रकार के विवाह हैं।

उपरोक्त आठों विवाहों में ब्रह्मादि पहिले चार विवाह जिन में कि सदाचारी गुणसम्पन्न वर को आदरपूर्वक बुलाकर गृहस्थ धर्म पालन के लिए कन्या प्रदान की जाती है—श्रेष्ठ माने गए हैं। इसके अतिरिक्त आसुर आदि चार विवाह सर्वथा लोक-निन्दित और निकृष्ट ही हैं।

खेद का विषय है, कि भारततेर अन्य देशों की भांति आज भारत में भी आसुरादि अन्तिम चार प्रकार के विवाहों का प्रचार दिनानुदिन बढ़ता जा रहा है। मनु के—

ज्ञातिभ्यो द्रविणं दत्वा कन्यायै चैव शक्तितः ।
कन्याप्रदानं स्वाच्छन्द्यादासुरो धर्म उच्यते ॥

—के अनुसार पंजाबादि कुछ प्रान्तों में जहाँ एक ओर वर पक्ष वालों से हजारों रुपयों की रकम ऐंठकर—'कन्या विक्रय' द्वारा इस आसुर विवाह को पर्याप्त प्रोत्साहन मिल रहा है, वहाँ बंगाल बिहार आदि दूसरे प्रान्तों में टीके और दहेज के रूप में अच्छी खासी रकम कन्यापक्ष वालों से ऐंठने का उद्योग करके 'पुत्र-विक्रय' की एक नई सामाजिक कुप्रथा को पनपने दिया जा रहा है। यह बुराई धीरे-धीरे सम्पूर्ण देश में फैल रही है। और अन्य स्थानों पर भी लोग देखा देखी ऐसा करने लगे हैं। परिणाम स्पष्ट है; आये दिन न जाने कितनी मूक कन्याएँ इस टीके की वेदी पर बलि हो जाती हैं। इस सौदेबाजी का दूसरा परिणाम यह है कि एक ओर योग्य किन्तु गरीब युवक पांच हजार की रकम न होने के कारण सुशिक्षित और सभ्य पत्नी नहीं प्राप्त कर पाते, दूसरी ओर सुशिक्षित कुलीन एवं गुणसम्पन्न कन्याएं भी पांच हजार की रकम का टीका न दे सकने के कारण अयोग्य पात्रों को सौंप दी जाती हैं, जहाँ वे जीवन्मृत दशा में चार-चार आंसू रो रोकर इस आसुरी सामाजिक कुप्रथा के कारण हिन्दू समाज को कोसती हुई अपना जीवन पूरा करती हैं। आज के समय की सबसे बड़ी पुकार है कि, न केवल भारत में ही किंतु सम्पूर्ण विश्व में ही ब्राह्म विवाह का प्रचलन होना चाहिए जिसके लिए मनु के अनुसार न किसी विशेष रुपए पैसे की आवश्यकता है, न किसी अन्य आडम्बर की। चाहिए केवल एक विशुद्ध खद्दर का वस्त्र, तथा वन से अनायास ही प्राप्त हो सकने वाली पुष्प जल गन्ध आदि पूजन सामग्री। वर को मांगलिक वस्त्र

पहिनाकर उसका विधिवत् पूजन सम्मान हो और उसे कन्या-दान दे दिया जाए। यथा—

आच्छाद्य चार्चयित्वा च श्रुतिशीलवते स्वयम्।
आहूय दानं कन्याया ब्राह्मो धर्मः प्रकीर्तितः ॥ (मनु०)

यह है भारतीय विवाह का आदर्श और एक ऐसी प्रणाली जिसे अमीर और गरीब सब भली प्रकार निभा सकते हैं।

ब्राह्म विवाह बनाम प्रेम विवाह

आधुनिक काल के प्रेम विवाह (Love marriage) या मनु के शब्दों में 'गन्धर्व विवाह' का वर्णन किए विना यह प्रकरण अधूरा ही समझा जाएगा। आज सम्पूर्ण नवशिक्षित समाज में यही 'गन्धर्व विवाह' लोकप्रियता को प्राप्त हो रहा है। अनेक प्रकार के उपन्यास कथा कहानी तथा ६० प्रतिशत चलचित्रों (Films) द्वारा इसको महत्ता प्रदर्शित की जा रही है और जनता को यह समझाने की कोशिश की जा रही है कि उचित या अनुचित किसी भी रीति से यदि किन्हीं स्त्री पुरुषों का आपस में प्रेम, वासनामय आसक्ति हो जाय तो उनका परस्पर विवाह संबंध न होने देना सामाजिक अत्याचार है। इस आशय को प्रकट करने के लिए अनेक प्रकारकी काल्पनिक रोमांचकारी कथाओं द्वारा इस प्रेम विवाह का समर्थन किया जाता है। यही नहीं किंतु आजके पढ़े लिखे लोगों की धारणा हो चली है कि विवाह से पूर्व ही भावी दम्पतियों का आपस में प्रेम संबंध होना आवश्यक है और तभी उनका विवाह होना चाहिए जब वे एक दूसरे को प्रेम करने लगें। संक्षेप में आज के जड़ जगत् का यह वैवाहिक सूत्र बन गया है,

T

'चूंकि अमुक का अमुक से प्रेम हो गया है फिर चाहे वह वासना-मय और क्षणिक ही क्यों न हो—अतः उन दोनों का विवाह हो जाना चाहिए।' परन्तु अध्यात्म-प्रधान आर्य जाति का वैवाहिक सूत्र सदा से यह चलता आ रहा है—'क्योंकि अमुक कन्या का अमुक वर के साथ अनुभवी अभिभावकों की अनुमति से विवाह संबध स्थिर हो गया है अतः अब इन दोनों को जीवन भर एक दूसरे से स्थायी प्रेम करना चाहिए।' संक्षेपतः विदेशी जिसे चाहते हैं उसे व्याहते हैं जबकि भारतीय जिसे व्याहते हैं उसे चाहते हैं।

'जहां प्रेम वहां विवाह' धारणा नितान्त भ्रमपूर्ण है और वाह्य सौंदर्य पर आश्रित होने के कारण स्थायी भी नहीं है। क्षणिक शारीरिक सौंदर्य या इसी प्रकार के अन्य गुणों की नींव पर खड़ा होने वाला यह गार्हस्थ्य रूपी प्रासाद स्थायी नहीं हो सकता। तथा परिस्थिति-वशात् उत्पन्न होने वाला एक हल्का सा परिवर्तन ही इसे धूलिसात् करने के लिए बस है। जिन विदेशों के अन्धाधुन्ध अनुकरण पर आज प्रेमविवाह, उन्मुक्त प्रेम आदि समाज विरोधी तत्त्वों का प्रसार हो रहा है इनके कारण उन देशों का गृहस्थ जीवन कितना कष्टमय वन गया है इसे हम देखकर भी नहीं देख पाते। इस प्रकार के संयम तथा आदर्शहीन क्षणिक प्रेम संबंधों ने वहां विवाह को एक खेल बना दिया है–गुड्डा गुड़िया का खेल, जो आज है कल नहीं। पतिदेव को बाहर काम पर जाने पर हर घड़ी यह सन्देह बना ही रहता है कि दफ्तर से लौटने पर बीवी मिलेगी भी या नहीं। इस प्रेमविवाह या उन्मुक्त प्रेम से जो भयंकर परिणाम निकलते हैं और समाज में जिस अव्यवस्था का प्रसार होता है उसका अनुमान करना भी कठिन है। इस प्रकार के पाशविक प्रेम के परिणामों पर प्रकाश डालते हुए मोलकुस

T

(Molkus) महोदय ने 'लिटरेरी डाइजेस्ट' में एक लम्बा लेख लिखा है। वे रूस के विषय में लिखते हैं—

"यदि स्त्री पुरुष शादी करना चाहें तो बस 'इच्छा' ही कानून के लिए काफी है। वे चाहें तो उसे रजिस्टर में दर्ज करादें चाहे न कराएँ यह भी इच्छा पर निर्भर है। सोमवार को शादी होती है तो मंगल को तलाक। १९२६ में १,००,००० स्त्रियों को उनके पति छोड़ गए, ९०,००० स्त्रियोंके बच्चों को 'अपना' स्वीकार करने वाला कोई नहीं मिला; १८,००० स्त्रियों ने अदालत में दरख्वास्त दी कि उन्हें अपने पतियों से बच्चों के भरण पोषण के लिए खर्चा दिलवाया जाय। इस प्रकार २,०८,००० स्त्रियों का कुछ ठिकाना नहीं मालूम पड़ता। ये अंक सरकारी कागजों के हैं और जो संख्या सरकारी कागजों में आने से रह गई है उसका हिसाब ही नहीं। दो लाख आठ हजार स्त्रियों की संतान का भरण पोषण कौन करेगा ? रूस में लावारिस बच्चे —जो इस प्रकार की सोमवार को शादी और मंगलवार के तलाक से पैदा हुए हैं, ४० लाख की संख्या में मौजूद हैं। (लिटरेरी डाइ० ६ अगस्त १९२७)

अभी हाल में ही रूस की एक युवती ने १ घंटे में दो बार विधवा होकर संसार के सामने एक नया रिकार्ड रक्खा है और भारतेतर देशों को गार्हस्थ्य जीवन की अवस्था को नग्न रूप में संसार के सामने उपस्थित कर दिया है। यथा—

एक घंटे में दो बार विधवा

'लेनिनग्राड १३ जनवरी ५०

यहाँ की एक युवती ने १ घंटे में दो बार विधवा होकर

T

दुनिया में एक नया रिकार्ड कायम किया है। कहा जाता है उसका सैनिक पति बन्दीगृह में था। युवती को सूचना मिली, कि बन्दी सैनिक छोड़ दिए गए हैं और उसका पति घर लौट रहा है। वह स्टेशन जाने को तैयार थी, तभी तार मिली कि उसके पति की मृत्यु हो गई है। उस युवती ने तुरन्त अपने दूसरे प्रेमी से शादी कर ली, तभी किसी से पता चला कि वह सकुशल वापिस लौट रहा है। युवती अपने नए प्रेमी को छोड़ उसे लेने स्टेशन पर गई जहां जाने पर उसने देखा कि वास्तव में उसका पति मर गया है और उसी नाम का दूसरा बन्दी सैनिक उन मुक्त बन्दियों में विद्यमान है। वह घर लौटी तो देखा कि उसके निराश प्रेमी ने फांसी द्वारा आत्महत्या कर ली है। (दनिक 'अमरभारत' दिल्ली १५-६-५०)

सभ्य राष्ट्रों की सामाजिक दशा के उपरोक्त दयनीय चित्र हमारी आँखें खोल देने के लिए पर्याप्त हैं। इनसे हमें शिक्षा लेनी चाहिए और विदेशी आदर्शों के अन्धाघुन्ध अनुकरण की दुष्प्रवृत्ति का परित्याग करना चाहिए। आज की सबसे बड़ी आवश्यकता यही है कि इस प्रकार के विचारों को बढ़ावा देने वाले उपन्यास नाटकों और सिनेमा चित्रों को सर्वथा रोका जाए और सर्वत्र विवाह के ब्राह्मरूप का ही प्रचार होना चाहिए। आर्य जाति ने दाम्पत्य जीवन को सुखमय बनाने के लिए यह सिद्धांत स्थिर किया है कि प्रेम मूलक विवाह न होकर विवाह मूलक प्रेम ही श्रेयस्कर है। महाभारत रामायणादि ग्रन्थ इस सिद्धांत की पुष्टि करते हैं, क्योंकि क्षत्रियों में प्रचलित स्वयम्बर प्रथा से होने वाले सभी विवाहों का परिणाम अन्त में बुरा ही निकला। शकुन्तला दुष्यन्त-नल-दमयन्ती की कौन कहे, सीता

T

और द्रौपदी के स्वयंवरों का परिणाम महायुद्ध के रूप में जन-संहारक ही सिद्ध हुआ। संयोगिता के स्वयंवर का कुपरिणाम तो जयचन्द और पृथ्वीराज के पारस्परिक विरोध की सीमा लांघकर समस्त भारत को अन्यून एक सहस्र वर्ष तक विदेशी दासता के अभिशाप रूप में भोगना पड़ा।

विवाह कब ?

विवाह की अवस्था के सम्बन्ध में आज संसार में एक विचित्र हास्यास्पद स्थिति दिखलाई देती है। एक ओर हमें इस प्रकार के विवाह देखने को मिलते हैं जिनमें वर वधू की अवस्था इतनी छोटी होती है कि उन्हें इस विवाह में सिवाय चहल पहल, सुन्दर भोजन और कुतूहल-जनक तमाशे के अन्य कुछ ज्ञात नहीं होता। दूसरी ओर विलंवित विवाह की प्रवृत्ति जोरों पर है जिसके अनुसार लड़कियों को बीस-पच्चीस वर्ष की अवस्था तक बलात् कौमार्य में रखा जाता है और उनके अभिभावक आँखों पर ठीकरी रखकर समय की गतिविधि से बिलकुल आँखें मूंदकर उन निष्पाप कन्याओं को दुराचरण के अन्धकूप में स्वयं धक्का देते हैं। हमारी नम्र सम्मति में यह दोनों ही प्रथाएँ शास्त्र-विरुद्ध होने के कारण समाज के लिए घातक ही नहीं सर्वथा विनाशकारी हैं। लेखक को जब अपने गाँवों में अशिक्षित ग्रामीणों के यहाँ दुधमुंहे बच्चे-बच्चियों का विवाह देखने का अवसर पड़ता है, मुहावरे की रीति से 'दुधमुंहे' नहीं किन्तु वास्तव में ही चार-पाँच साल की दुधमुँही कन्याओं को गोद में लेकर भाँवरें पढ़ते, या इससे भी छोटी अवस्था की होने पर लड़की के स्थान पर गुड़ की भेली से ही वर को भाँवरें लेते देखकर उसके हृदय में जो अपार क्षोभ होता है उसकी सीमा का उस समय कोई पारावार नहीं रहता जब उसे आधु-

निक शिक्षित और सभ्य घरों में यूरोप के शीत प्रधान देशों के अनुकरण पर पच्चीस-तीस वर्ष की कुंआरी कन्याओं को देखने का अवसर पड़ता है, या जब उसे समाचार पत्रों में ऐसे विलम्बित विवाहों से उत्पन्न होने वाली दुराचारपूर्ण घटनाओं के सम्बन्ध में समाचार सुनने को मिलते हैं।

प्रथम कोटि के विवाह जहाँ बचपन में अर्थात् समय से पूर्व ही बालकों के मनमें कामभाव को उदय करके उन्हें तथा उनकी भावीसंतान को निर्बल बनाने के कारण बनते हैं, वहाँ दूसरी प्रकार के विवाह भी लड़के-लड़कियों में समय पर कामभाव की प्राकृतिक प्रेरणा के उदय होने पर उसकी पूर्ति के वैध साधनाभाव में अवैध व्यभिचार को प्रोत्साहन देकर समाज को खोखला बनाने में कम सहायक नहीं सिद्ध होते। इसलिए यह आवश्यक है कि वैवाहिक अवस्था पर भी इस प्रघट्ट में कुछ प्रकाश डाला जाए।

हम पीछे कह आए हैं कि विवाह एक प्राकृतिक संस्कार है और स्त्रीत्व पुंस्त्व नामक दो तत्त्वों के संमिश्रण से सृष्टि विस्तार ही इसका फल। इसलिए हमें विवाह काल के निर्णय में प्रकृति को ही प्रधानता देनी चाहिए। इस बात को दृष्टि में रखकर अगर हम विवाह काल पर विचार करें तो सर्वप्रथम हमें देखना होगा कि लोक में स्त्रीत्व या पुरुषत्व का विकाश किस अवस्था में पूर्णरूप से हो जाता है। भिन्न २ देशों के जलवायु एवं वातावरण के अध्ययन से पता चलता है कि इस विकास का काल सर्वत्र एक नहीं है। शीत प्रधान देशों में स्त्रीत्व विकाश १२ से १६ साल की अवस्था के अन्दर होता है तो उष्ण प्रधान देशों में १० से १४ तक की अवस्था में। प्राय: सभी व्यक्ति जानते हैं कि स्त्रीत्व के विकसित होने पर शरीर में लावण्य-वृद्धि, स्तनों का प्रादुर्भाव, हाव भावों का उदय,

इत्यादि लक्षणों के अतिरिक्त रजोधर्म का भी प्रारम्भ हो जाता है। मुख्य रूप से यह उसके गर्भधारण सामर्थ्य का सूचक चिह्न है और प्रकृति की ओर से होने वाला एक ऐसा विचित्र परिवर्तन है जो उसे बचपन के आनन्दपूर्ण निश्चिन्त जगत् से बरबस खेंचकर चिन्ता हर्ष शोक से परिपूर्ण यौवन के मधुर द्वार पर ला खड़ा कर देता है। इस समय उसकी स्त्रीत्व भावात्मक चैतन्यशक्ति जागृत हो जाती है। सांसारिक विषयों के सम्बन्ध में उसके हृदय में ज्ञानोदय होने लगता है। मादक अभिलाषाएं धीरे-धीरे उसके मन में एक रंगीन दुनिया का नक्शा खेंच देती हैं और तब स्त्री चाहती है एक ऐसे पुरुष का संसर्ग —जो उसकी अभिलाषाओं को साकार रूप प्रदान करे। कामशास्त्र में लिखा है—

रजस्वला च या नारी विशुद्धा पञ्चमे दिने।
पीडिता कामबाणेन ततः पुरुषमीहते॥

अर्थात्—ऋतुस्नाता नारी पांचवें दिन काम पीड़ित होकर पुरुष सम्बन्ध को चाहती है।

यह तो हुई स्त्रीभाव के विकास की चर्चा। पुरुषत्व विकास १८ वर्ष से प्रारम्भ होता है" और लगभग २५ वर्ष की अवस्था में पूर्ण होता है। किशोरावस्था की समाप्ति और यौवन के प्रारम्भ के तीन चार वर्षों में युवकवर्ग की वही स्थिति होती है जो नवयौवना कन्याओं की। अवस्था का यह परिवर्तन जिसे हम कोई विशेष महत्त्व नहीं देते—बालकों के जीवन में अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। नीतिकारों का कहना है कि इस समय बालकों का हृदय दूध की प्रथम उफानी अवस्था में से गुजरता है और

ज़िस प्रकार उस उफनते हुए दूध को उस समय यदि सावधानी पूर्वक कोई न सम्भाले तो उसका विखर जाना अस्वाभाविक न होगा, वैसे ही यदि उस समय वालकों के सदाचार पर कठोर नियन्त्रण न हो तो उनका उत्पथगामी बनकर किसी कुसंगति में फंस जाना आश्चर्यजनक न होगा।

स्त्रीत्व और पुंस्त्व विकास की इन अवस्थाओं को समझने के उपरांत विचार का विषय यह है कि विवाह इस शारीरिक विकास के वाद किया जाए या पूर्व में ही।

गहराई से इस प्रश्न को देखने पर हमें ज्ञात होगा कि कन्याओं के लिए विवाह की अवस्था 'रजोदर्शन' से तुरन्त पूर्व की ही समुचित है, न इससे वहुत पहिले की और न बहुत बाद की ही। पुरुष की आयु यथेच्छ युवा हो और वह ब्रह्मचर्य पूर्ण कर चुका हो। इस प्रकार के विवाह से जहाँ पति पत्नी में आयु भर प्रेम रहेगा वहाँ उनसे होने वाली सन्तान भी बलवान् हृष्ट पुष्ट और दीर्घजीवी होगी।

महर्षि सुश्रुत ने, जो कि शारीरिक विज्ञान के प्रमुख आचार्य हैं इस विषय का विचार करते हुए लिखा है—

अथास्मै पञ्चविंशतिवर्षाय द्वादशवर्षीयाँ पत्नीमावहेत्। (सुश्रुत शारीरस्थान १०, सू० ५८)

अर्थात्—पच्चीस वर्ष के पुरुष को बारह वर्ष की कन्या के साथ विवाह करना चाहिए।

हमें यहाँ इस बात को भलो भाँति समझ लेना चाहिए कि विवाह और गर्भाधान दो पृथक् २ संस्कार हैं और पृथक् २ अवस्थाओं में ही किए जाते हैं। सुश्रुत आदि महर्षियों ने जहाँ

विवाह के लिए कन्या की उपयुक्त आयु १२ वर्ष स्वीकार की वहाँ गर्भाधान के लिए १६ वर्ष की। उपर्युक्त उद्धरण से अनुपद अगले ही सूत्र में महर्षि कहते हैं—

ऊनषोडशवर्षायामप्राप्तः पञ्चविंशतिम् ।
यद्याधत्ते पुमान् गर्भं गर्भस्थः स विपद्यते ॥
जातो वा न चिरञ्जीवेज्जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रिय ।
तस्मादत्यन्तबालायां गर्भाधानं न कारयेत् ॥

(सुश्रुत शारीरस्थान, १०, ५९-६०)

अर्थात्—यदि पच्चीस वर्ष से कम आयु का पुरुष सोलह वर्ष से कम आयु की स्त्री में गर्भाधान करे तो वह गर्भ कोख में ही मर जाता है। यदि किसी प्रकार सन्तान उत्पन्न भी हो जाए तो वह देर तक जीवित नहीं रहती, यदि जीवित रह भी जाए तो वह सदा दुर्बल ही रहेगी। इसलिए इससे कम अवस्था की स्त्री में कभी गर्भाधान नहीं करना चाहिए।

आज लोग अज्ञान के कारण इस भेद को भूल गए हैं। उन के विचार में विवाह मानों इस ग्राम्य व्यवहार के लिए पूरी स्वतन्त्रता मिलने का ही दूसरा नाम है। जो आलोचक 'शीघ्र विवाह' के कारण स्मृति-प्रणेता महर्षियों की कटु आलोचना करते नहीं थकते उन्हें भी इस बात का पूरा ज्ञान नहीं कि महर्षियों को 'शीघ्र-विवाह' ही अभिमत है 'शीघ्रगर्भाधान' नहीं, यही एक रहस्य है कि जिस तक सर्वसाधारण की पहुंच नहीं। जरा विचार कीजिए कि क्यों सभी स्मृतिकार और सुश्रुत सरीखे शरीर शास्त्र के महान् ज्ञाता आचार्य, एक स्वर से विवाह के

लिए बारह वर्ष की आयु का ही समर्थन करते हैं और गर्भाधान के लिये १६ वर्ष से अधिक अवस्था का ? क्या कारण है कि रजस्वला होने से पूर्व विवाह न करने की दशा में महर्षि ने—

प्राप्ते तु द्वादशे वर्षे यः कन्यां न प्रयच्छति ।
मासि मासि रजस्तस्याः पिता पिबति शोणितम् ।
(यम संहिता)

—कहकर पिता को कन्या के रजःपान जैसे घृणित पाप का भागी कहने में भी हिचकिचाहट नहीं अनुभव की और विवाह के अनन्तर गर्भाधान के लिये १६ वर्ष से पूर्व की आज्ञा भी नहीं दी !

वस्तुतः बात यह है कि ऋतु दर्शन होने के बाद स्त्री के हृदय में काम-वासना का उन्मेष होने लगता है, उसका मन पुरुष समागम के लिये उत्कण्ठित हो उठता है । ऐसी दशा में आवश्यकता इस बात की है कि उसकी इन मानसिक प्रवृत्तियों को एक केन्द्र पर स्थिर किया जाय, वे इधर-उधर न भटककर एक ही केन्द्र पर अवलम्बित रहें । यह तभी सम्भव है जब पहिले से उसका विवाह सम्पन्न हो चुके क्योंकि उस दशा में स्त्री के हृदय की सम्पूर्ण वासनाएं और आकांक्षाएं उसके पति पर ही आश्रित होंगी । उसकी प्राप्ति की आशा में ही वह अन्य चिन्तन छोड़ सकेगी । ऐसा न होने पर उसकी नैसर्गिक कामना एक अवलम्बन न पाकर जहाँ तहाँ भटककर उसके पातिव्रत्य में हानिकारक सिद्ध हो सकती है । यदि जीवन की उस प्रारम्भिक दशा में वह अपने मार्ग से च्युत हो गई तो फिर सम्पूर्ण जन्म में उसका सुधार होना बड़ा कठिन है । यही सब सोच समझकर महर्षियों

ने रोज़दर्शन से तुरन्त पूर्व ही विवाह की आज्ञा दी है। विवाह के अनन्तर स्त्री अपने पिता के घर ही रहे और उचित अवस्था आने पर उसे पति के घर भेज दिगा जाय इसलिए द्विरागमन या गौने की प्रथा आज भी बहुत से देशों में प्रचलित है जो कि इस वैज्ञानिक दृष्टिकोण के सर्वथ उपयुक्त है।

आज जिस अवस्था में कुमारियों का विवाह किया जाता है उस अवस्था तक पहुंचते २ उनकी पातिव्रत्य की पवित्र मानसिक पृष्ठभूमि प्रायः मलिन हो चुकी होती है। उस पर जाने कितने चित्र बन और विगड़ चुके होते हैं ऐसी दशा में उनमें पातिव्रत्य की सम्भावना करना व्यर्थ है। जब किसी भवन की नींव ही डगमगा जावे तब उस पर खड़ा होने वाला भवन—चाहे दृढ़ चट्टानों से क्यों न तैय्यार किया गया हो—अवश्य ही पतनोन्मुख रहेगा।

संसार के सभी विचारशील पुरुष फिर चाहे वे भारतीय हों या वैदेशिक, विवाह की इस अवस्था के विषय में एकमत हैं। भारतीय आचार्यों की सम्मति उद्धृत करने के बाद प्रकृत प्रसंग में कतिपय विदेशी विद्वानों की सम्मति उद्धृत करना अनुपयुक्त न होगा।

'It is not good for a man or woman to live alone. Our tendency of the time is the apparently increasing avoidance of marriage or its postponement until on age when the adaptation of one individual of the couple to the other is difficult. Because habits have become fixed so firmly that their ajustment is a difficult or

at laet, on annoying process. Obevioulsy, there fore, it seems to me that early marriage should be encouraged. (Thomes A. Edison)

श्री एडीसनमहोदय –जिनसे संसार 'ग्रामोफोन' मशीन के आविष्कारक के रूप में भली भांति परिचित है लिखते हैं—"स्त्री या पुरुष के लिए अकेला अर्थात् अविवाहित रहना अच्छा नहीं है। आज के समय में लोगों की प्रवृत्ति होती जा रही है कि विवाह बिल्कुल ही न किया जाय या देर में किया जाय–इतनी देर में कि वर-वधू की प्रकृति का सामञ्जस्य ही न हो सके। यह सब अनुचित है क्योंकि बड़ी अवस्थाओं में पहुँचने तक उनकी आदतें इतनी मजबूत हो जाती हैं कि बाद में उनमें परिवर्तन करना कठिन ही हो जाता है। इसलिए मुझे यही अच्छा मालूम होता है कि शीघ्र विवाह को प्रोत्साहन देना चाहिए।

इसी प्रकार मिस्टर लेकी साहब ने अपने 'यूरोपीय आचार का इतिहास' नामक पुस्तक में एक स्थान पर लिखा है—

The nearly universal practice of the custom of early marriages among the Irish peasantry has alone rendered possible that high standerd of female chastity that intence and jealous sensitiveness respecting female honour, for which among many failing and some vices, the Iris poor have long been pre-eminen in Europe,

अर्थात्—आयर्लैण्ड के गरीब किसानों में होने वाली 'शीघ्र-विवाह' प्रथा ने वहाँ की स्त्रियों में उच्चतम पातिव्रत्य और उसके

प्रति आदरभाव को बना रक्खा है अनेक दोषयुक्त होने पर भी वे आयरिश लोग वर्षों तक यूरोप में सम्मान भाजन रहे हैं।'

इसी प्रकार अन्य भी बहुत से पाश्चात्य विचारकों ने विवाह की आयु के विषय में भारतीय शास्त्रकारों की दूरदर्शिता को स्वीकार किया है और माना है कि वास्तव में यदि गृहस्थजीवन में हम सच्चा प्रेम, सच्ची सुख शान्ति चाहते हैं तो हमें इसी प्रणाली का आश्रय लेना चाहिए।

विवाह क्यों ?

विवाह वह पुनीत और महत्त्वपूर्ण संस्कार है जिसने मानव-पशु को सच्चे अर्थों में 'मानव' बनाने में महत्त्वपूर्ण भाग लिया है। विवाह संस्था अत्यन्त प्राचीन है और हम निर्विवाद रूप से कह सकते हैं कि सभ्यता और संस्कृति के प्रथमोदय काल में जब मानव वंशधरों ने सामाजिक जीवन का सूत्रपात किया तभी विवाह प्रणाली का प्रारम्भ हुआ होगा। यह प्रणाली जिस राष्ट्र में जितनी ही विकसित और उत्कृष्ट रूप में अपनाई गई, वह राष्ट्र उतना ही सभ्य सुसंस्कृत तथा उन्नत बनता गया। विवाह संस्था के अभाव में मनुष्य, पशु से भी बदतर होता, न उसकी कोई पत्नी होती न मां बहिन न बेटी। अपनी भोगलिप्सा को पूरा करने के लिए वह कुत्तों की तरह स्त्री मात्र की तलाश में भटकता फिरता, बलात्कार करता. छीना झपटी करता, गुर्राता, लड़ता और बुद्धिमान खूंखार जानवर से कहीं अधिक अपनी सारी बुद्धि का उपयाग विनाश के उपाय सोचने में करता। उसके इस प्रकार के व्यभिचार से उत्पन्न मानव-पिल्ले गली २ ठोकरें खाते फिरते, न उनका घर होता न, दर न स्कूल न कालेज! शिक्षा, सभ्यता,

संस्कृति, विज्ञान से सर्वथा शून्य एक पशु-राष्ट्र ही हमारे सामने होता ! यह विवाह ही तो है जिसने मनुष्य को परिवार दिया, घर बसाने की प्रेरणा दी, परिवार के भरण पोषणार्थ विविध कार्यों व पेशों को जन्म दिया और आज का हमारा यह संसार बन पाया।

विवाह सुव्यवस्थित सामाजिक जीवन का अंगमात्र नहीं किन्तु इसका उद्देश्य इससे भी कहीं अधिक महान् गहन और दिव्य भावपूर्ण हैं। उसकी इस महत्ता और गम्भीरता तक पाश्चात्य जगत् पहुंचे या न पहुंचे किन्तु आर्य महर्षियों और दार्शनिकों ने भारतीय जनता के सामने जो उद्देश्य रखे हैं उनकी प्रतिष्ठा सर्वथा लोकोत्तर आदर्शों पर की है।

विवाह के पाँच उद्देश्य

१—विवाह का प्रथम उद्देश्य सृष्टि विस्तार के लिए स्त्रीत्व और पुरुषत्व धारा का सम्मेलन है। हमने पीछे कहा है कि प्रकृति के अणु २ में उपरोक्त दोनों शक्तियें विद्यमान रहती हैं और सृष्टि विस्तार के लिए इन दोनों का सम्मेलन प्राकृतिक प्रेरणा से होता हैं। यह सम्मेलन ही सृष्टि का कारण है और प्रवाहरूप से संसार को अन्तकाल तक जीवित रखता आया है।

२—चौरासी लाख पशु पक्षी कीट पतँगादि योनि भोगकर ही मानवदेह प्राप्त होती है। इस योनि में यद्यपि परमात्मा ने मनुष्य को दया करके सदसद्विवेकिनी बुद्धि प्रदान की है किन्तु अनेक योनियों में पड़ा हुआ पशु संस्कार उससे छूटता नहीं है, जिससे मनुष्य की प्रवृत्ति स्वच्छन्द आहार विहार की ओर स्वभावतया ही झुकी रहती है। प्रत्येक पुरुष के हृदय में संसार भर की स्त्रियों लिए और स्त्रियों में सभी पुरुषों के लिए भोग भावना

T

प्राकृतिक रूप से विद्यमान रहती है। जब कभी उसे अवसर मिलता है वह अपनी इस पशु प्रवृत्ति को चरितार्थ करने में नहीं चूकता। इतिहास के पाठक जानते हैं कि यवन राजाओं ने अपने समय में सैकड़ों की तादाद में सुन्दर स्त्रियों का अपहरण करके अपने हरमों को भर लिया था। अभी पिछले दिनों भारतीय गृह विप्लव के समय कामान्ध नर-पशु ने स्त्री जाति पर बलात्कार अपहरण प्रघर्षणादि जो बर्बर अत्याचार किये हैं वे मानव-व्याप्त पशुता के नंगे उदाहरण हैं। नर नारियों की इस पशु सदृश स्वच्छन्द तथा निर्बाध काम भावना को एक स्त्री व एक पुरुष में बांध देना और अनेक प्रकार के शास्त्रीय नियमों द्वारा धीरे-धीरे इस निवृत्ति की ओर ले जाना ही विवाह का दूसरा उद्देश्य है।

३—विवाह का तीसरा उद्देश्य है प्रजोत्पत्ति द्वारा पितृऋण से मुक्ति तथा वंश रक्षा! पीछे लिखा जा चुका है कि विवाह का उद्देश्य भोग विलास नहीं किंतु—'प्रजायै गृहमेधिनाम्' के अनुसार सन्तानोत्पत्ति ही उसका प्रयोजन है। प्रारम्भ में दिये गए वैदिक उद्धरण में—'मया पत्या प्रजावती' कहकर वेद ने प्रजोत्पादन ही विवाह का लक्ष्य माना है। शास्त्रदृष्ट्या मनुष्य पर तीन ऋण होते हैं १. देवऋण २. ऋषिऋण ३. पितृऋण। इनमें से यज्ञ याग देवपूजनादि द्वारा देवऋण से, शास्त्रों एवं वेदों के स्वाध्याय से ऋषिऋण से मनुष्य मुक्त हो जाता है, शेष पितृऋण से मुक्ति प्रजोत्पादन द्वारा ही होती है। इसके अतिरिक्त चूंकि आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु का ही अंश है इसलिए सत्‌चित्‌ आनंद रूप तीनों गुणों की ओर उसकी प्रवृत्ति स्वभावतः ही होती है। इनमें से सत् का ही प्रकृत विषय से सम्बन्ध है। सत् का अर्थ है सत्ता। मनुष्य अपनी

सत्ता को सर्वदा अक्षुण्ण रखना चाहता है उसकी इस अभिलाषा का फल ही सन्तान है जिसे उत्पन्न करके वह संतोष अनुभव करता है। पुत्र उसका अपना ही रूप है और उसकी उपस्थिति से वह अपनी 'सत्' भावना को सफल समझता है। यही प्रवृत्ति विवाहमूलक वंश परम्परा को जन्म देती है, जिसकी रक्षा के लिए—अनेक प्रकार के यज्ञानुष्ठानादि का आश्रय लेकर भी—मनुष्य सतत प्रयत्नशीलता रहता है।

४—मनुष्य स्वार्थी प्राणी है। अपने शरीर में उसकी जितनी मोह ममता होती है उतनी और किसी वस्तु में नहीं। विवाह द्वारा मनुष्य के इस ममत्व क्षेत्र को विस्तार मिलता है। अब तक उसका जो प्रेम और मोह अपने शरीर मात्र में था, वह क्रमशः पत्नी पुत्र कन्या सगे सम्बन्धी आदि परिवार में विभक्त हो जाता है। इस प्रकार यह स्वार्थ परक प्रेम पहिले घर की चार दीवारी से प्रारम्भ होकर मुहल्ला, गली, नगर, प्रान्त. देश और समस्त विश्व में व्याप्त होकर वसुधैव कुटुम्बकम्' के पुनीत आदर्श का व्यावहारिक रूप धारण कर लेता है। विश्वप्रेम ममत्व की की अन्तिम श्रेणी है और इस पर पहुँचकर मनुष्य—'यो माम् पश्यति सर्वत्र सर्वञ्च मयि पश्यति' के उच्च शिखर पर पहुँच जाता है। इसलिए स्वार्थपरक प्रेम को विस्तृत कर उसका मुक्ति में पर्यवसान ही विवाह का चौथा उद्देश्य है।

५—त्याग क्षमा धैर्य सन्तोषादि गुणों का संग्रह तथा अभ्यास विवाह का पांचवाँ उद्देश्य है। गृहस्थ में रहते हुए दम्पति को एक दूसरे के हित के लिए स्वार्थत्याग, स्व-प्रतिकूल व्यवहार में क्षमा, अत्यन्त कष्ट में भी धैर्य आदि गुणों का प्रयोग करना अनिवार्य हो जाता है। यही गुण विकसित होकर मनुष्य को सामाजिक क्षेत्र में विशिष्ट व्यक्तित्व प्रदान करते हैं। गृहस्थ

T

की इस पाठशाला में त्याग प्रेम आदि का पूर्ण अभ्यास कर जब दम्पती इनका प्रयोग ईश्वर प्राप्ति के अध्यात्म मार्ग में करते हैं तो वे भगवत्प्राप्ति के अत्यन्त सन्निकट पहुंच जाते हैं। यही उनके जीवन का लक्ष्य है।

विवाह संस्कार की रूपरेखा

कन्या के लिये योग्य सुशील स्वस्थ सुन्दर एवं शिक्षित वर का निश्चय करने के उपरान्त शास्त्रीय विधि से उसका वरण होता है इसे वाग्दान (सगाई) कहा जाता है। इसके अनंतर गुरु शुक्रास्तवर्जित मुहूर्त शास्त्र की दृष्टि से शुभयोग में विवाह का दिन निश्चित किया जाता है (मुहूर्तादि के विषय में इसी ग्रन्थ में अन्यत्र प्रकाश डाला जा रहा है) इसकी सूचना वर पक्षवालों को दे दी जाती है और तब दोनों घरों में तैयारी प्रारम्भ हो जाती है। विवाह से पूर्व तदङ्गभूत कुछ शास्त्र मूलात्मक और कुछ देशाचार तथा कुलाचार मूलक कृत्य किए जाते हैं। यद्यपि उनका स्वरूप अनेक रूप में पाया जाता है अनेकता के कारण सब रूपों पर प्रकाश डालना असम्भव है, तथापि बहुजन सम्मत विधियों की कुछ रूपरेखा लाभप्रद समझकर यहाँ प्रकट की जाती है।

हाथ

सात निर्गर्भा सुहागिन स्त्रियें मंगलगान के बीच विवाह का वस्तु-संग्रहात्मक प्राथमिक कृत्य प्रारम्भ करती हैं जिसे हाथ कहा जाता है। यह प्रथा विवाहार्थ अन्नादि संग्रह का प्रतीक है और अभिभावकों को विवाह की सब प्रकार की तैय्यारी के लिए प्रेरणा करती है। चूंकि स्त्री विधाता को विषम प्रकृति का रूप है अतः विषम संख्याक स्त्रियां संगठित रूप से एकत्रित होकर

इस महान् कार्य को हाथ में लेती हैं। निर्गर्भा स्त्रियें इसलिए विशेष रूप से चुनी जाती हैं कि तैयारी में खूब परिश्रम कर सकें और थकें नहीं। सुहागिन इसलिए कि खूब प्रसन्नता पूर्वक इस कार्य में योग दे सकें। विधवा आदि का ऐसे कृत्यों के समय अपने पूर्व सुखादि के संस्मरण से और भी विक्षुब्ध हो जाना अस्वाभाविक नहीं है।

हरिद्रा-हस्त (हलधात)

यह विवाह की पूर्ववर्ती मांगलिक क्रियाओं का अंग है, इस का उद्देश्य पितृगणों की वन्दना और नृत्य गीतादि के द्वारा मांगलिकता की अभिवृद्धि करना है। इस अवसर पर घर में विधिवत् पितृगणों की स्थापना की जाती है जिसे थापा कहते हैं सब पारिवारिक और सजातीय बन्धु बान्धव इस अवसर पर एकत्रित होकर पितृ अर्चना करते हैं। यह एक प्रकार से उन दिवंगत महान् आत्माओं के प्रति आभार प्रदर्शन है जिनके उत्तराधिकारी बनकर वे लोग संसार में सम्मान के साथ जीवन यापन कर रहे हैं। पितृ-वंदना के अतिरिक्त इस दिन रात्रि भर जागरण का कार्य चलता है और स्त्रियों को इस जागरण में अमोद प्रमोद का पर्याप्त अवसर मिल जाता है।

बान (तेल)

यह क्रिया एक तरह से वर कन्या के शारीरिक सौन्दर्याधान के उद्देश्य से की जाती है। पहिले ही की तरह सात सौभाग्यवती स्त्रियां जौं हल्दी आदि पीसकर स्वयं उससे उबटन तैयार करती हैं। दही तेल दूर्वा इन तीनों वस्तुओं से वे वर कन्या

का सातबार अभिषेक करती हैं अर्थात् यह तीनों पदार्थ उसके शरीर पर लगाए जाते हैं। दही, शीतल हृद्य और शान्तिकारक है; तेल स्निग्ध और कान्तिप्रद है। दही के साथ मिलकर वह प्रत्येक रोम में प्रवेश करके खुश्की ताप अथवा त्वचा सम्बन्धी सभी दोषों के लिए रामबाण औषधि का कार्य करता है। जिस हरी दूर्वा से यह वस्तुएँ उसके शरीर पर लगाई जाती हैं, वह स्मृति शक्तिप्रद और नेत्र ज्योतिवर्धक है; तेल में संयुक्त करने से उसके गुण तेल में आ जाते हैं। इस प्रकार दही आदि के द्वारा उनके शरीर को तरोताजा बनाने के बाद शारीरिक स्वच्छता के लिए उबटन का प्रयोग करते हैं। यह उबटन शरीर में निर्मलता कोमलता तथा स्निग्ध कान्ति के लिए अपूर्व वस्तु है। साबुन की तरह खुश्की तथा रूक्षता से कोसों दूर है। वर वधू के शरीर में स्थायी कान्ति (नूर) लाने के लिए इससे बढ़कर कोई पदार्थ नहीं।

स्नान के अनन्तर वर वधू के पांव में रखड़ी अथवा रक्षासूत्र पहिनाने की प्रथा प्राय: सभी प्रान्तों में हैं। यह रक्षासूत्र कौड़ी सूपारी, पीली सरसों, लोहे का छल्ला आदि वस्तुओं से निर्मित होता है। वस्तु विज्ञान के अनुसार यह सब वस्तुएँ अदृश्य वातावरण जन्य हानियों से भावि-दम्पतियों की रक्षा के साथ उनकी विशेष स्थिति की परिचायक होती हैं। इसमें आबद्ध होने के बाद उन्हें कठिन परिश्रम-साध्य कार्यों से छुट्टी दे दी जानी चाहिए, जिससे उनके शरीर में अचानक कोई रोग या कष्ट न उत्पन्न हो जाय और व्यर्थ ही 'विवाह में बोज का लेखा' खड़ा हो। ज्योति:शास्त्रोक्त रीति से ५, ७ बार बान=सौन्दर्याधान के सम्पन्न हो जाने पर एक अपूर्व सौन्दर्य से उनका शरीर चमक उठता है। इस स्नान की अन्तिम क्रिया विशेष महत्त्व की है,

वान का अन्तिम स्नान जिस जल से होता है वह साधारण जल नहीं होता। यद्यपि इस अवसर पर घर में पानी की कमी नहीं होती, परतु फिर भी वर वधू के भाई एवं भावज दोनों उनके स्नानार्थ कूएँ से जल खींचकर लाते हैं और तव स्त्रियें एक छलनी में से उस जल को छानती हुई उन्हें स्नान कराती हैं।

स्पष्ट है कि यह जलाहरण-क्रिया छोटे भाई वहिनों के प्रति ज्येष्ठ भ्राता के प्रेम, कष्ट-सहन एवं सद्भावना को प्रतीक है, किन्तु अभी लाये हुए जल को पुनः छानने का क्या तात्पर्य ? वास्तव में यह क्रिया भाई भावज के लिये एक शिक्षा है। आज तक बड़े भाई के साथ वह कुमार या कुमारी जिस प्रकार रहते रहे हैं उसने चाहे उन्हें प्रेम से रखा है या उपेक्षा से, अच्छा खिलाया या बुरा इस बात को किसी ने नहीं छाना। किन्तु इस समय वे कुमार कुमारी अपने पावों पर खड़े होने जा रहे हैं; गृहराज्य में अब वे बरावर के भागीदार वनने जा रहे हैं ऐसी दशा में बड़े भाई द्वारा कष्ट उठाकर लाये हुए विशुद्ध जल को भी छलनी द्वारा छानकर मानों समाज उसे चेतावनी दे रहा है कि भविष्य में उसका प्रत्येक व्यवहार लोगों की वौद्धिक छलनी द्वारा छनकर ही पवित्र समझा जायेगा। छोटे भाई बहिन के प्रति आज से ठसका जो विशेष उत्तरदायित्व बढ़ गया है उसका सदैव ध्यान रखना चाहिए।

मंडप पूजन (मंढा)

मंढा या मण्डप पूजन की प्रथा थोड़े वहुत भेद से प्रायः सभी प्रान्तों में पाई जाती है, कहीं काष्ठस्तम्भ निर्माण के रूप में, कहीं शामियाना आदि आदि लगाकर मण्डप निर्माण के रूप में, और कहीं केले आदि से मण्डप निर्माण के रूप में। परंतु इन

में सबसे अधिक वैदिक-विज्ञानपूर्ण एवं भावनाभरित प्रथा का प्रचलन भारत के आर्यावर्त ब्रह्मावर्तादि भाग में पाया जाता है जहां मंढे का निर्माण चार संछिद्र शकोरों (मिट्टी के बरवों) द्वारा होता है। ये चारों पात्र एक विशेष विधि से एक सूत्र में पिरोये जाते हैं और वे विवाह वेदी स्थान के ठीक ऊपर लटका दिये जाते हैं। इनका क्रम है—प्रथम पात्र अधोमुख, दूसरा ऊर्ध्वमुख-मिष्टान्न, दूर्वा, अक्षत तथा द्रव्य प्रपूर्ण। तीसरा अधोमुख उसे ढकता हुआ, और चौथा ऊर्ध्वमुख। तीन दिशाओं में बंधी हुई तीन रस्सियों के सहारे ये वेदी पर लटके रहते हैं।

आज भी प्रायः प्रत्येक विवाह में मंढा होता है और पाधाजी इसे पूर्वोक्त रीति में बंधवा भी देते हैं किंतु इसका क्या रहस्य है इसे बहुत कम व्यक्ति जान पाते हैं। रस्मी तौर पर यह सब क्रिया समाप्त कर दी जाती है। वास्तव में यह चारों मृण्मय पात्र चारों आश्रमों के प्रतीक हैं जिनको मानव जीवनरूपी एक सूत्र में पिरोया जाता है। अधोमुखी प्रथम पात्र ब्रह्मचर्य का प्रतीक है जिसमें ब्रह्मचारी की संसार से विवक्तावस्था, ज्ञान प्राप्ति के लिये उसका नम्रीभाव आदि का सुन्दर निदर्शन है। उसके ऊपर ऊर्ध्वाधोमुख रूप से संयुक्त रखे हुए दोनों पात्र उन गृहस्थ और वानप्रस्थ के प्रतीक है जिनमें दम्पत्ति ने संयुक्तावस्था में रहना है किन्तु सावधान! उनकी यह संयुक्तावस्था खोखली=सार-विहीन न होनी चाहिए, अन्यथा गृहस्थ जीवन नितान्त दुःखमय हो जाएगा, उसमें अन्न धन की पूर्णता होनी चाहिए. यह बात उसमें डाले जाने वाले खाद्य पदार्थ और द्रव्य से प्रदर्शित की जाती है, और अन्त में होता है चौथा पात्र-ऊर्ध्वाभिमुख, शून्य संन्यास का प्रतीक! –जिसमें कि पुरुष संसार की ओर पीठ कर ऊर्ध्वाभिमुख, अपरिग्रहशील और एकाकी बनकर ब्रह्म-

प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील होता है। इन चारों आश्रमों के समूह रूप मानव जीवन का सम्बन्ध ज़िन रश्मियों—डोरों से होता है वे हैं ऋग् यजु साम लक्षण डोरें जो वेद-त्रयी के नाम से मानव जीवन में अभिव्याप्त हैं।

मण्डप स्थापना के बाद कुमार कुमारी के हाथ में उपाध्याय कंगना—रक्षा कंकण पहनाता है और सात स्त्रियें इसमें एक-एक ग्रंथी लगाकर इसे और भी दृढ़ बना देती हैं। एक व्यक्ति भी सात गांठ लगा सकता था, परन्तु ऐसा न करके सात भिन्न २ स्त्रियों द्वारा बन्धन सूचित करता है कि वे उनकी देखभाल का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले रही हैं। इन सात ग्रन्थियों द्वारा वर कन्या को भी सावधान किया जाता है कि वे गर्भाधान संस्कार से पूर्व तक शरीर की सातों धातुओं का बलपूर्वक निग्रह करें एक २ ग्रन्थी एक एक धातु के संयम—बंधन की प्रदर्शक है।

घुड़चढ़ी

मातुल गृह से समागत वैवाहिक वस्त्रों से सुसज्जित वर शिर पर एक विलक्षण मुकुट धारण करता है जिसमें लोहे की एक सूई भी रखी जाती है, पर यँह क्यों ? इस मुकुट में यह सूई ! हां सचमुच लोहे की सूई ही तो है कितनी तीखी और बींधनेवाली। हां, भई यह भी आवश्यक है, यह फूलों का सेहरा और यह रंग-बिरंगा आभामय मुकुट केवल सुख और आह्लाद से भरा हुआ ही नहीं। गृहस्थ की जो जिम्मेवारी जो भार मुकुट द्वारा युवक के शिर पर रखा जा रहा है उसके अन्तर में न जाने ऐसी कितनी सुइयें छिपी हुई हैं, इसी दायित्व का प्रतीक यह कण्टकाकीर्ण ताज है। यह बात उस तीखी सुई द्वारा ही तो ज्ञात होती है।

घुड़चढ़ी को प्रस्थान करने से पूर्व कई प्रांतों में घोड़े की बाग बहनोई के हाथ में पकड़ाने की प्रथा है। यह शायद इसलिये कि इस अनुभवहीन सवार के लिए उनसे अधिक उपर्यक्त पथ-प्रदर्शक कोई नहीं मिल सकता। बहनोई और साले का सम्बन्ध स्वभावत: ही मधुरतापूर्ण होता है। इस रस्म से मानों वे कुमार को गार्हस्थ्य के इस नवोन मार्ग पर सुखेन चलने की उपर्युक्त शिक्षा देने का उत्तरदायित्व स्वीकार करते हैं।

प्रस्थान काल में वहिनें अपने आंचल की हवा से भाई के ऊपर आने वाली समस्त भावि बाधाओं को उड़ा देना चाहती हैं, अक्षतों को वर्षा द्वारा उसकी मंगलकामना करती हैं और इस प्रकार मंगलगान के बीच युवक अपनी मातृभूमि की परिक्रमा करता है, मन्दिर में इष्टदेव को वन्दना करने जाता है और ग्राम देवता की अभ्यर्चना कर विवाह यात्रा के लिए प्रस्थान करता है। यही घुड़चढ़ी है।

द्वाराचार (ढुकाव)

आज रात में विवाह होना है किन्तु उससे पूर्व वर को अभी कई परीक्षाओं में से गुजरना है। ढुकाव या द्वाराचार इसी परीक्षा का ही दूसरा रूप है। वाग्दान से पहिले पिता या भाई ने ही तो वर को देखा था, लड़की के परिवार वालों ने गली मुहल्ले वालों ने भी तो अभी उसे देखना है। बिना उनके देखे और परखे पाणिग्रहण नहीं हो सकता। विवाह जीवन भर का सौदा है इसलिए इसे बड़ी परीक्षा के बाद ही तय करना पड़ता है।

घोड़ी आई, वर महाशय इसी पर चढ़ कर श्वसुर-गृह जाएंगे। आज तो नाई या दूसरे लोग वर को गोदी में भरकर

घोड़ी पर बैठा देते हैं, जिसका परिणाम स्पष्ट है कि शारीरिक दृष्टि से अयोग्य और निर्बल युवकों की कौन कहे अबोध बालकों और खूसट बूढ़ों तक की भी शादियें कर दी जाती हैं। इससे एक ओर तो व्यभिचार को बढ़ावा मिलता है और दूसरी ओर उनसे होने वाली निर्बल सन्तान राष्ट्रीय निर्बलता का कारण बनती हैं। जिस समय इस प्रथा का सूत्र-पात हुआ था उस वक्त ऐसा न था। इस अवसर के लिए रथ पालकी, बग्घी तांगा या अन्य कोई सवारी बखूबी मिल सकती थी लेकिन नहीं, वर को घोड़ी पर ही जाना चाहिए पूर्व काल में प्रत्येक नगर गांव में पंचायत की ओर से ऐसी घोड़ियें पाली जाती थीं, जो सदा तो किसी अन्धकार पूर्ण स्थान में बंधी रहती थी केवल ढुकाव के समय वर की परीक्षा के लिए ही उस चंचल घोड़ी का प्रयोग होता था। कुछ तो स्वाभावतः ही घोड़े की चंचलता प्रख्यात है इतने पर भी नानाविध बाजे गाजे बजा कर उसे अधिकाधिक चमका दिया जाता था और तब उस घोड़ी पर बैठकर वर को श्वसुर गृह जाना होता था। इस प्रथा से वर की वैवाहिक अवस्था का परीक्षण हो जाता था कि वह युवा हो चुका है ? अभी बालक या निर्बल तो नहीं है ? यदि वह उस घोड़ी के उठते हुए वेग को, उसके अवस्थाजनित मद को, अपने पुरुषत्व से दबाकर उसे अपने नियंत्रण में रख सका तो वह उत्तीर्ण हो गया। तब देखनेवालों को निश्चय हो गया कि इसके घर जाकर लड़की गृहस्थ का सच्चा सुखोपभोग कर सकेगी।

घोड़ी पर चढ़कर वर ने वधू-गृह की ओर प्रस्थान किया, इस अवसर पर वह अकेला नहीं जाता सभी वरयात्री उसके साथ होते हैं अच्छा खासा जलूस बन जाता है और नगर के प्रधान २ मार्गों से होता हुआ जलूस आगे बढ़ता है इस प्रकार

की यात्रा का उद्देश्य जहां शोभा की अभिवृद्धि है वहां आगत महानुभावां और वर को नगर के उत्तमोत्तम बाजारों, सड़कों एवं स्थानों को दिखला देना भी है।

अब द्वाराचार की रस्म शुरू हुई। द्वार पर पहिले से ही एक चौंकी रखी हुई है वर के खड़े होने के लिए, जिससे वह ऊँचाई पर होने के कारण सब को दीख सके। चौंकी पर चढ़ने के बाद उसके मुख पर पड़ा हुआ सेहरा हटा दिया गया। स्त्रियें बड़ी उत्सुकता से उसके रूप को देखने लगीं। एक सुभगा आगे बढ़ी उसके हाथ में एक थाल है जिसमें प्रज्वलित दीप रखा हुआ है। स्त्रियों के मंगलगान के बीच उसने वर की आरती की; कदाचित् अन्धकार के कारण सब ने वर को अच्छी तरह न देखा हो तो वह इस प्रकाश में अच्छी तरह दीख जाए। उसके मस्तक पर तिलक किया उसे कुछ खाने को दिया और अंत में सात सौभाग्यवती स्त्रियों द्वारा तैयार किए गए रंग बिरंगे सूत्र (सतनाले) के कन्या पक्ष की निकटतम सम्बन्धिनी सुभगा ने वर को मिनना अर्थात् उसकी नाप तोल शुरू की। आज के विवाहों में तो यह क्रिया भी रूढ़िमात्र रह गई है और उस सतनाले को सातवार वर के शरीर के स्पर्शमात्र करके इसे पूरा कर दिया जाता है। किंतु इसका वास्तविक तात्पर्य था वर की वक्षःस्थल की चौड़ाई, उस के परिणाह और कंधों के उन्नतत्व आदि का विधिवत् नाप लेना जिससे उसकी गार्हस्थ्य योग्यता का ठीक ज्ञान हो सके। कहना न होगा कि इस सतनाले में कन्या के नाप तौल के अनुसार सात ग्रन्थि पहले से बाँधी जाती थीं, जिससे वर कन्या के नाप तौल का साम्य करके इस युगल जोड़ी का सामंजस्य स्थिर किया जा सके। आज के युग में जो ठिगने वरों के साथ उन्नत शरीर

कन्याओं का, या फिर अत्युन्नत वरों के साथ छोटे कद की कन्याओं का विवाह करके 'ऊंट के गले में टल्लो' वाली कहावत को चरितार्थ किया जाता है. उसी वैषम्य का परिणाम दम्पति को जीवन भर भुगतना पड़ता है।

ढुकाव या द्वाराचार की यह प्रथा विवाह का अत्यन्त आवश्यक अंग है। यदि वर में कोई ऐसा दोष हो जिसके कारण लड़की के जीवन नष्ट होने का खतरा हो तो विवाह रोक दिया जा सकता है। ऐसे सैंकड़ों उदाहरण मिल सकते हैं कि बारात लड़की के नगर में पहुँच जाने पर भी द्वाराचार के परीक्षण के समय वर के असफल होने के कारण वापस लौट आई।

विवाह-संस्कार

विवाह संस्कार के मुख्यतः ४ अंग हैं (१) वर-पूजन (२) कन्यादान, (३) लाजा होम भांवरें और (४) सप्तपदी।

श्रोत्रिय उपाध्याय द्वारा मंढे के नीचे विवाह संस्कारार्थ दो वेदियों का निर्माण होता है—एक ग्रहवेदि और दूसरी यज्ञवेदि उनके समीप ही पूर्वाभिमुख वरादि के लिए स्थान कल्पित होता है। पूर्वादि दिशा के सम्बन्ध में हम पिछले अध्याय में विचार कर चुके हैं। प्रारम्भिक पूजनादि के अनन्तर प्रथम वर का समन्त्रक पूजन किया जाता है। वधू-पिता वर के चरण प्रक्षालन करता है, बैठने के लिए आसन देता है अर्घ्य प्रदान करता है और तब दही मक्खन तथा मधु को संयुक्त कर तैयार किया हुआ पदार्थ—जिसे वैदिकी भाषा में 'मधुपर्क' कहा जाता है- उसे पीने को दिया जाता है। यह सब क्रियायें युक्तिसंगत ही हैं

और किसी अभ्यागत के आने पर उसके सत्कार के लिए की ही जाया करती हैं इसलिए इनके विषय में कुछ वक्तव्य नहीं है।

कन्यादान

कन्यादान का ऊँचा आदर्श केवल भारतवर्ष में ही है अन्यत्र नहीं, भारतेतर देशों में या तो कन्या विक्रय होता है या स्वयं वरण। कन्यादान में पिता या अन्य अभिभावक एक शंख में दूर्वा जल अक्षत पुष्पादि डालकर संकल्प करता है दोनों ओर के उपाध्याय उपस्थित जन समुदाय के समाने वर एवं कन्या के गोत्र, प्रवर शाखा एवं तीन पीढ़ियों के क्रमिक व्यक्तियों का तारस्वेण नामोच्चारण करते हुए परिचय देते हैं। इस प्रकार का परिचय वे एक बार नहीं किन्तु तीन बार दोहराते हैं जिस का अभिप्राय यही है कि यदि उन दोनों से कुल गोत्रादि के सबंध में किसी को कोई सन्देह हो तो वह व्यक्ति अब भी आपत्ति कर सकता है और विवाह रोका जा सकता है।

इस शाखोच्चार के अनन्तर संकल्प पूरा हो गया। प्रदाता ने कन्या का दक्षिण अंगूठा वर के हाथ में अर्पित करते हुए शंखस्थ जलादि की धारा उसके ऊपर डाल दी मानों इस क्रिया के द्वारा उसने उस पाणि-पीड़न को और भी दृढ़ कर दिया। शंखादि सभी पदाथ मांगलिक होने के साथ वस्तु-विज्ञान की दृष्टि से अपनी २ विशेषताओं से भरपूर हैं। शंख के संबंध में हमने इसी ग्रन्थ में अन्यत्र विस्तृत प्रकाश डाला है, यहाँ इतना ही समझ लेना चाहिए कि वह असंक्रमणशील परमाणुओं से बना हुआ पदार्थ है। उसमें डाली वस्तु उसी रूप में विद्यमान रहती है और वस्त्वन्तर से प्रभावित नहीं होती। कन्यादान के जिस

T

पवित्र भाव से उसमें जल डाल गया है उसका प्रभाव वर वधू के भाविदाम्पत्य-जीवन पर पड़ेगा और उनका प्रेम उसी शंखस्थ जल की धारा के समान सर्वदा निर्मल रहेगा। वनस्पति की दृष्टि से दूर्वा की अपनी कुछ विशेषताएं हैं। एक स्थान पर उत्पन्न होने पर वह निरन्तर फैलती ही चली जाती है, उसे कितना भी काटो फिर हरी हो जाती है। उन दम्पतियों के प्रेम में भी यही विशेषता होनी चाहिए। वह निरन्तर वृद्धि को प्राप्त हो और सदा हरे-भरे ही रहें—इस विचार दृढ़ता के लिये उसका सान्निध्य नितान्त उपयोगी है। जल का तो काय ही संपृक्त वस्तुओं का एकीकरण है। विखरे हुए मिट्टी के भिन्न-भिन्न परमाणुओं को संयुक्त कर जल विशाल भवनों का रूप दे देता है। शरीर में विद्यमान मन जलीय अंश से ही उत्पन्न है अतः जल के माध्यम से ही कन्याप्रदाता अपनी हृद्गत भावना को वर के मन में दृढ़ करता है।

लाजा होम, भावरें

कन्यादान के अनन्तर वर द्वारा साधारण होम होता है और तब कन्या अपने भाई की सहायता से शमी के पत्तों से मिली हुई खीलों से हवन करती है। इस अवसर पर पढ़े जाने वाले सभी मंत्र और सभी क्रियाएँ अतिशय भावात्मक और अर्थपूर्ण हैं। कन्या जब अंजलि में चरु लेकर पवित्र मन से अग्नि से प्रार्थना करती है कि—

"हे अग्नि! आप मुझे पितृगृह से वियुक्त होने की शक्ति प्रदान करें और पतिगृह में दृढ़ बनाएँ।" एवं जब वह—

'आयुष्मानस्तु मे पतिरेधन्तां ज्ञातयो मम स्वाहा।'

—कहकर अपने पति के दीर्घ जीवन की मंगल कामना के साथ

अपने माता-पिता भ्राता आदि की वृद्धि के लिए आशीर्वाद मांगती है तो वहाँ एक स्वर्गीय दृश्य उपस्थित हो जाता है। इसी प्रकार वर जब अग्नि के समक्ष उसका पाणिग्रहण करते हुए कहता है—

(१) सौभाग्य हित पाणि-ग्रहण करता तुम्हारा मैं यहाँ
तुम मुझ दयित के साथ हो, जैसे बने वैसे यहाँ ॥
वृद्धत्व तक संसार-सुख, भोगो सदा मम साथ हो।
भग अर्यमा सविता पुरन्दर साक्ष्य यहाँ यथार्थ हो।
गार्हस्थ्य धर्मों की यहाँ नित पालना के हेतु वे।
तुझको मुझे हैं सौंपते सब सुखों के सेतु वे।

(२) पति मैं तुम्हारा हूँ शुभे ! पत्नी हुई तुम मम यहाँ
मैं प्रेम पूर्वक हूँ तुझे स्वीकार करता तुम वहाँ ॥
कर प्रेम से स्वीकार मुझको प्रीति का आगार हो।
मैं साम हूँ, ऋक् तू हुई, गृह धर्म का आधार हो
तुम हो धरा आकाश हूँ मैं, हम करें परिणय विमल
फिर साथ मिलकर वीर्य भी धारण करें अति ही अमल
उत्तम प्रजा उत्पन्न कर निज राष्ट्र को करदें सुखी
वृद्धत्व तक साथी रहें होवें सुखी नहिं हों दुखी
हम हों परस्पर प्रेमयुत रुचियुक्त फिर मन से भले
सौ वर्ष तक देखें सुनें जीवें सुखी हो निर्मले ॥

मूल मन्त्र—'गृभ्णामि ते सौभगत्वाय'' शृणुयाम शरदः शतम्।'

—तो उपस्थित सभ्य मण्डल के सामने भारतीय विवाह के ऊँचे आदर्श की प्रेममयी मूर्ति आलोकित हो उठती है।

शमि-पत्र मिश्रित लाजाओं से हवन भी विशेषाभिप्राय से ही किया जाता है। शमी के गुणों का विचार करते हुए भाव-प्रकाशकार ने लिखा है—

शमी तिक्ता कटू शीता काषाया रोचनी लघु।
कफकासभ्रमिश्वासकुष्ठार्शक्रमिजित्स्मृता ॥

अर्थात्—शमी-कटु, चरपरी, शीतल, कषैली, रुचिकारक हल्की होती है और कफ, खांसी, श्वास, कोढ़, बवासीर के कृमियों की विनाशक है। इसो प्रकार खील, मधुर शीतल अग्नि-दीपक और रूक्ष है। पित्त, कफ, अतिसार, रुधिर-विकार, प्रमेह, मेद रोग और प्यास को दूर करने वाला है। हम पीछे हवन के प्रकरण में सिद्ध कर आए हैं कि अग्नि में हुत होने पर प्रत्येक वस्तु का गुण लक्षगुणा हो जाता है। महर्षियों ने इसी अभिप्राय से इनको इस यज्ञ में स्थान दिया है कि कदाचिद् वर कन्या में से किसी को इनमें से कोई रोग हो तो वह इसकी धूनि से अच्छा हो सके और वातावरण में फैले हुए रोगों के कीटाणु भी सर्वथा नष्ट हो जाएँ।

इसके अतिरिक्त वनस्पति विज्ञान की दृष्टि से शमी में स्वभाव से अग्नितत्त्व प्रबल होता है। कविकुल गुरु कालिदास ने अपने रघुवंश महाकाव्य में 'शमीमिवाभ्यन्तरलीनपावकाम्'—कह कर इसी तथ्य का काव्य भाषा में वर्णन किया है। इसलिए प्राचीनकाल में यज्ञ यागादि में अश्वत्थ-रूढ़-शमी निर्मित अरणी से अग्नि उत्पन्न की जाती थी। सो चूंकि विवाह-संस्कार अग्नि के समक्ष हो रहा है इसीलिए शमी की सहायता से उस अग्नि

T

को सुचारु रूप से प्रज्वलित रखना भी इसका प्रयोजन कहा जा सकता है।

लाजाहुति के अनन्तर वर वधू को एक सुस्थापित पत्थर के टुकड़े पर पांव रखने के लिए कहता है और वधू उस पर अपना दाहिना पांव रखती है। इस क्रिया का अभिप्राय इस काल में पढ़े जाने वाले मन्त्र में ही सुस्पष्ट कर दिया गया है कि—'भद्रे ! तुम इस पाषाण की ही भाँति गृहस्थाश्रम में दृढ़ रहना, विचलित न होना आदि।'

तदनन्तर वर, वधू को आगे करके तीन बार इसी प्रकार लाजा होम सहित अग्नि-प्रदक्षिणा करता है इसी को भांवरें या फेरे कहा जाता है। चूंकि शास्त्रीय दृष्टि से विवाह का उद्देश्य धर्म अर्थ काम मोक्ष रूप पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति है, अतः विवाह के समय चार ही प्रदक्षिणायें की जाती हैं। इनमें धर्म अर्थ एवं काम की पूर्ति का मुख्य साधन चूंकि स्त्री ही होती है, अतः उसे ही आगे करके यह प्रदक्षिणाएँ सम्पन्न होती हैं। किसी भी कार्य के निर्माण के लिए साधन पहिले प्रस्तुत किए जाते हैं और कार्य बाद में। गृहस्थाश्रम में किए जाने वाले यज्ञ याग, अतिथि सुश्रूषा, तीर्थ व्रतादि गृहधर्मों में स्त्री की उपस्थिति अनिवार्य होती है। विज्ञ पाठकों से भगवान् राम का वह उपाख्यान छिपा हुआ नहीं है कि जनकनन्दिनी भगवती सीता के अभाव में भगवान् राम ने उनकी सुवर्ण-प्रतिमा को साथ लेकर ही यज्ञ सम्पन्न किया था। तात्पर्य यह है कि स्त्री गृहधर्म का अनिवार्य साधन है।

अर्थप्राप्ति का साधन भी स्त्री है, यदि पुरुष हजारों रुपये रोज भी कमावे, किन्तु उसे सम्भालने-वाली स्त्री न हो तो वह सब धन शीघ्र ही दुर्व्यसनों या प्रकारान्तर से नष्ट हो जाता है।

T

इसी प्रकार यदि घर में सुघड़ गृहिणी हो तो परिमित आय को भी इस रूप में व्यय करती है कि मनुष्य को कभी अर्थ कष्ट नहीं भोगना पड़ता इसलिये अर्थप्राप्ति का साधन भी स्त्री हुई।

काम के विषय में तो कहना ही व्यर्थ है, उसका प्रमुख साधन तो स्त्री है ही। अतः शास्त्रकारों ने स्त्री को आगे करके धर्मार्थ काम सम्बन्धिनी तीन प्रदक्षिणायें करने का विधान किया है, अर्थात् इन विषयों में स्त्री को पुरुष का नेता स्वीकार किया है। वैसे भी स्त्रियों में पुरुषों की अपेक्षा अधिक धार्मिक भावना श्रद्धादि, अधिक तृष्णा एवं 'कामश्चाष्टगुणः स्मृतः' के अनुसार अधिक कामशक्ति होती है।

चौथी प्रदक्षिणा मोक्ष सम्बन्धी है। इस विषय में स्त्री पुरुष का पथ प्रदर्शन नहीं कर सकती किन्तु वह तो इस मार्ग में पुरुष के लिए यत्किंचित् विघ्नकर ही है। मोक्षमार्ग के पथिक बड़े-बड़े ऋषि महर्षि उसकी मनोहर छवि, अनुपम रूप लावण्य और मोह-मयी मूर्ति को देखकर ऐसे भूले कि अपने लक्ष्य से कोसों दूर जा गिरे, इसीलिए मोक्षमार्गी के लिये कहा गया है—

> पदापि युवतीं भिक्षुर्न स्पृशेद् दारवीमपि।
> स्पृशन् करीव बध्येत करिण्या अङ्गसङ्गतः॥

मुमुक्षु भिक्षु का कर्तव्य है, कि चरण से भी काष्ठमयी भी युवति का स्पर्श न करे। हाथी जिस प्रकार हथिनी के अंगसंसर्ग मात्र से बन्धन को प्राप्त करता है, मुमुक्षु भी इसी प्रकार स्त्री को स्पर्श करने से सांसारिक बन्धनों में फिर जकड़ा जायगा। फलतः चतुर्थ प्रदक्षिणा में अर्थात् मोक्ष-प्रप्ति के लिये प्रस्थान के समय पुरुष स्वयं नेता बनता है और स्त्री उसके पदचिह्नों का

अनुगमन करती है और इस प्रकार हिन्दू विवाह की परिणति मोक्ष में ही होती है। इन चारों प्रदक्षिणाओं द्वारा मानों स्त्री-पुरुष अग्नि के समक्ष उपरोक्त पुरुषार्थ चतुष्टय की ओर प्रस्थान करने का व्रत ग्रहण करते हैं।

सप्तपदी

विवाह-संस्कार का चतुर्थ अंग सप्तपदी है। सप्तपदीका अर्थ है सात कदम तक चलना, अथवा स्त्री को सात=स्थानों की अधिकारिणी बनाना। 'वह ऊँचे पद पर प्रतिष्ठित है' वाक्य में जिस प्रकार पद शब्द व्यक्ति विशेष के स्थान का सूचक है इसी प्रकार यहाँ भी पद शब्द का अर्थ गृहस्थ के साधन उन स्थानों से है जिनकी रक्षा एवं उत्तरदायित्व स्त्री ने वहन करना है।

(१) यों तो अन्न सम्पूर्ण संसार के ही जीवन का साधन है किंतु गृहस्थ का तो वह मुख्य अंग है। गृहस्थी को जहां अपना और बाल-बच्चों का पेट भरना है वहाँ अतिथि अभ्यागत साधु ब्रह्मचारी सभी उसकी अन्न की मुट्ठी के सहारे ही तो संसार यात्रा निर्वाह करते हैं। इन सबका पालन भी तो गहस्थी का कर्तव्य ही है। इसलिये वर-वधू को सर्व प्रथम अन्न की रक्षा, उसके संग्रहादि के लिए गृहस्थ की ओर चलने को प्रस्तुत करता है। शास्त्र कहता है—

'एकमिषे विष्णुस्त्वानयतु'

अर्थात्—हे सुभगे ! विष्णु भगवान् तुझे अन्न (की रक्षादि) के लिये (गृहस्थ के) प्रथम स्थान को प्राप्त करायें। वधू इस कर्तव्यभार को सहर्ष स्वीकार करती है किन्तु वह स्पष्ट कर देना चाहती है कि इस भार को वह तभी स्वीकार कर सकती है जबकि

T

(पुरुष) उसे अपने घर के अन्न धनादि का एकाधिपत्य दे, इस लिये वह कहती है—

धनधान्यञ्च मिष्टान्नं व्यंजनाद्यं च यद् गृहे ।
मदधोनञ्च कर्तव्यं वधूराद्ये पदेऽब्रवीत् ॥

अर्थात्—आपके घर में जो धनधान्य शाक व्यंजनादि विविध खाद्य पदार्थ हैं, उन्हें आप यदि मेरे आधीन करना स्वीकार करें तो मैं इस भार को ग्रहण करने को तैयार हूँ, अस्तु.

(२) गृहस्थ का दूसरा साधन बल है। बल-वीर्य-सम्पन्न दम्पती ही गृहस्थ का सच्चा आनन्द उठा सकते हैं और राष्ट्र को स्वस्थ सन्तान देकर उसे बलशाली बना सकते हैं। इसलिए गृहस्थ की ओर दूसरा कदम बढ़ाने की प्रेरणा देता हुआ वर कहता है–

'द्वे ऊर्जे विष्णुस्त्वानयतु'

अर्थात्—हे सुभगे ! विष्णु तुझे बल प्राप्ति के लिए गृहस्थ के दूसरे स्थान को प्राप्त करायें। इस पर कन्या अपनी स्वीकृति देती हुई कहती है—

कुटुम्बं रक्षयिष्यामि सदा ते मञ्जुभाषिणी ।
दुःख धीरा सुखे हृष्टा द्वितीये साऽब्रवाद्वचः ॥

अर्थात्—मैं आपके कुटुम्ब की रक्षा करूँगी। सर्वदा मीठी वाणी बोलूँगी, दुःखी में धैर्यशील और आपके सुख में सुखी हूंगी।

(३) गृहस्थ का तीसरा साधन धन है जिसके बिना गृह-जीवन बिलकुल फीका हो जाता है और मनुष्य उसे उद्विग्न हो उठता है। हम पीछे कह चुके हैं कि स्त्री के बिना पुरुष के कमाए हुए धन का उचित उपयोग नहीं हो सकता इसीलिए शास्त्रकार

T

ने स्त्री को साक्षात् लक्ष्मी रूपा ही समझा है। तदनुसार गृहस्थ के तीसरे साधन धन की ओर स्त्री को प्रेरित करता हुआ वर कहता है:—

'त्रीणि रायस्पोषाय विष्णुस्त्वानयतु'

अर्थात्—विष्णु भगवान् तुम्हें धन के लिए तृतीय स्थान को प्राप्त करायें, इस पर भी वधू अपनी स्वीकृति देती है और उसके धन का सदुपयोग करते हुए पति-भक्त रहने का आश्वासन देती है।

(४) चतुर्थ पदाक्रमण का उद्देश्य गृहस्थ सम्बन्धी सुख प्राप्ति है। संसार के सभी प्राणियों का उद्देश्य सुख ही है, इसी सुख के लिए नाना प्रकार के दुःख उठाये जाते हैं। किन्तु गृहस्थ का सुख विलक्षण है और प्राकृतिक प्रेरणा से उचित समय पर उस सुख की अभिलाषा का जागृत होना अनिवार्य है, इसलिए शास्त्र कहता है—

'चत्वारि मायोभवाय विष्णुस्त्वानयतु'

अर्थात्—सांसारिक सुख प्राप्ति के लिए विष्णु तुम्हें गृहस्थ के चतुर्थ स्थान को प्राप्त करायें। इस पर वधू एक पांव और आगे रखती हुई अपनी स्वीकृति प्रदान करती है और विश्वास दिलाती है कि—

लालयामि च केशान्तं गन्धमाल्यानुलेपनैः।
काञ्चनैर्भूषणैस्तुभ्यं तुरीये सा पदेऽवदत् ॥

अर्थात्—मैं गन्ध माल्य, विविध प्रकार के वस्त्राभूषणादि द्वारा समुचित शृङ्गार करके आपका ही आराधन करूंगी।

(५) वधू के पांचवे पदाक्रमण का उद्देश्य पशु-रक्षा है। गाय

भैंस, घोड़ा आदि पशु किसानों के तो परमोपकारक हैं ही किन्तु गोपालन तो प्रत्येक गृहस्थ के लिए अत्यन्त आवश्यक है। भारत का आज का गृहस्थ गाय के ही अभाव के कारण सर्वथा निर्बल क्षीण और संतप्त है। विशुद्ध दुग्ध घृत के सर्वथा अभाव से भारत की वर्तमान सन्तति कितनी निर्बल हो रही है यह किसी से छुपा नहीं है। इसलिए शास्त्र ने गृहस्थ के इस पशु रूप साधन की ओर भी ध्यान दिया है। वर कहता है—

'पञ्च पशुभ्यो विष्णुस्त्वानयतु'

अर्थात्—पशुओं की रक्षा के लिए विष्णु तुझे गृहस्थ के पाँचवे स्थान को प्राप्त करायें। वधू पांचवें पग को आगे बढ़ाती हुई इसे स्वीकार करती है।

(६) प्रत्येक ऋतु का विभिन्न प्रकार का आहार विहार होता है उस सबको समझकर तदनुकूल आचरण करने से ही मनुष्य स्वस्थ रह सकता है। यह ऋतुज्ञान ही स्वास्थ्य की कुँजी है। अपने सम्बन्ध में तो मनुष्य सावधान रह सकता है किन्तु बच्चों आदि के स्वास्थ्य के लिए ऋतुचर्या का भार स्त्री पर ही होता है। अतएव गृहस्थ के छठे साधन=ऋतुचर्या की ओर अग्रसर करता हुआ वर कहता है—

'षड् ऋतुभ्यो विष्णुस्त्वानयतु।'

अर्थात्—छहों ऋतुओं की अनुकूल चर्या की प्राप्ति के लिए विष्णु तुझे गृहधर्म के छठे स्थान को प्राप्त करायें। स्त्री इसके लिए भी अपनी स्वीकृति प्रदान करती है।

(७) इस प्रकार गृहधर्म के छहों स्थानों की अधिकारिणी हो जाने पर स्त्री पुरुष की पूर्ण रूप से अर्धाङ्गिनी बन जाती है—

T

घर में बराबर की अधिकारिणी और पुरुष की श्रेष्ठतम सखा, दासी नहीं। जो लोग हिन्दू धर्म में स्त्री की स्थिति के बारे में तरह २ के आक्षेप करते हैं और समझते हैं कि हिन्दू धर्म में स्त्री का पद दासी या पुरुष की वशवर्तिनी निकृष्ट नौकरानी का सा है, उन्हें वेद के इस मन्त्र को आँख खोलकर पढ़ना चाहिए। सातवें पदाक्रमण के लिए प्रेरित करता हुआ वर कहता है—

'सखे ! सप्तपदा भव सा मामनुव्रता भव विष्णुस्त्वानयतु'

अर्थात्—हे सखे ! अब तुम सखित्व की प्राप्ति के लिए सातवां पद आगे बढ़ाओ, तुम सवदा मेरे अनुकूल रहो। विष्णु तुम्हें इस मित्र रूप सातवे स्थान को प्राप्त करायें। और तब वधू अपना सातवाँ कदम आगे बढ़ाती हुई पुरुष की सहधर्मिणी सहचारिणी एवं अभिन्न आत्मा बन जाती है।

विवाह संस्कार का अन्त वधू की सिन्दूर से मांग भरने और उसे पुरुष के वामांग में बठाने की क्रिया द्वारा होता है। स्त्री अब पुरुष की अर्धांगिनी बन चुकी है। मस्तक में सौभाग्य सूचक मांगलिक सिन्दूर की रेखा डालता हुआ वर, उपस्थित देवताओं विद्वानों एवं गुरुजनों से उसके सौभाग्य के लिये आशीर्वाद की याचना करता है और वे सब हृदय से उसे आशीर्वाद देते हैं।

पति पत्नी दोनों खूब प्रेम पूर्वक गृहस्थाश्रम में स्थिर रह सकें अतः इस अवसर पर उन्हें विशेष रूप से ध्रुव दर्शन कराया जाता है। ध्रुव संसार में स्थिरता का प्रतीक है—अपने कर्त्तव्य और निश्चय पर सर्वदा अडिग रहनेवाला ! अतः वर वधू इस समय उसका दर्शन करते हुए अपने स्वीकृत मार्ग पर दृढ़ रहने का पावन सन्देश प्राप्त करते हैं।

छन

संस्कार पूर्ण हो चुका है। अब वर को छन कहने के लिये अन्दर जाना है। यह 'छन' क्या हैं ? क्यों हैं ? यह सब प्रश्न प्रत्येक जिज्ञासु के मन में उठते हैं। वास्तव में 'छन' छंद शब्द का अपभ्रंश है जिसका तात्पर्य कविता या पद्य से है। इस प्रथा का श्रीगणेश वर के साथ पारस्परिक परिचय के उद्देश्य से हुआ है। पारिवारिक नवयुवतियें कुमारियें आदि हास्य का द्वार खोलने से पूर्व वर को झिझक को मिटाने के लिए एवं सबके साथ उसके परिचय के लिए छंद श्रवण की रीति का आश्रय लेती हैं और उसे 'छन' सुनाने के लिए विवश करती हैं। यह एक प्रकार से वर की वाणी और ज्ञान की परीक्षा है। यदि वह शिक्षित है तो उसे कुछ कविताएँ, सूक्तियें अथवा छन्द तो अवश्य ही स्मरण होंगे ? इस धारणा पर इसका जन्म हुआ था। आज उसका रूढी रूप है और इस अवसर पर कुछ न कुछ सुनाने के लिए सभी लोग एक-दो दोहे आदि कण्ठस्थ कर लेते हैं। अतः रूढ़िरूप में भी यह लाभप्रद ही है और पारस्परिक परिचय का अच्छा साधन कहा जा सकता है। इसी प्रकार वधू-गृह पर वर के लिए और भी कई अवसर ऐसे आते हैं जिन में हास्य के साथ उसके बुद्धिकौशल, ज्ञान एवं स्वभाव की परख की जाती है। उदाहरणतया—वधू का कंकण माचन करने के समय उसे एक ही हाथ से कंगना खोलना पड़ता है। यह कोई शास्त्रीय विधान नहीं है किन्तु उसकी बुद्धि की परीक्षा के लिए ही ऐसा किया जाता है।

धान्य वर्पण

वधू-गृह पर विवाह संस्कार की अन्तिम क्रिया धान्यवर्पण

है। इसके साथ ही लगभग विवाह समाप्त हो जाता है और कन्या पतिगृह के लिए विदा हो जाती है। यह विवाह का उपसंहारात्मक दृश्य है और दर्शक के हृदय को प्रेम, करुणा, आह्लाद और दुःख की विचित्र भावभंगियों से आपूर कर देता है। वर्षों तक जिस घर में पाली-पोसी गई, बड़ी हुई, जिन गलियों में सहेलियों के साथ खेलते-खेलते बचपन बीता और यौवन आया, उन सबको सदा के लिए छोड़कर लड़की आज पराई बनकर एक अपरिचित देश में जा रही है यह दृश्य किस के हृदय को द्रवित नहीं कर देता। उमड़ते हुए आंसुओं को रोक कर उपस्थित जनसमूह रुंधे हुए कंठ से विदाई के गीतों के बीच धान्यवर्षण की रीति को पूरा करता है। यह शास्त्रीय प्रथा है और इसका उद्देश्य है उपस्थित गुरुजनों और अभिभावकों की ओर से वर-वधू के प्रति मंगल-कामना और शुभाशीर्वाद का प्रदर्शन। भारत कृषि-प्रधान देश है इसलिए यहाँ की प्रथाओं में धान्य आदि का सुन्दर समावेश मिलता है। किसी राजा-महाराजा का अत्यन्त स्वागत एवं सत्कार करने के अवसर पर धान और खीलों का वर्षण यहाँ की पुरानी और शास्त्रीय प्रथा है। चक्रवर्ती सम्राट् दिलीप के वन में प्रस्थान करने पर लताओं से हुई पुष्प-वृष्टि को महाकवि कालिदास ने—

'आचारलाजैरिव पौरकन्या'

कहकर भारत की इसी प्रथा की ओर संकेत किया है। चूंकि प्राणिमात्र का जीवन अन्न पर ही निर्भर है इसलिए ऐसे अवसरों पर धान्यवर्षण करके यह शुभकामना प्रकट की जाती है कि इन दोनों का गृहस्थ सदा अन्न धन से भरभूर रहे और सदा इसी भाँति धान्यवृष्टि होती रहे। यह भाव वाणीमात्र से

प्रकट किया जाने पर इतना प्रभाव-पूर्ण कभी न हो सकता था जितना कि क्रियात्मक रूप में जनता के समक्ष प्रदर्शित करने पर होता है।

इसके अतिरिक्त शास्त्र-दृष्टि से यह वर-वधू का पूजन है, सभी उपस्थित जन परिक्रमा के साथ धान्यवृष्टि करते हुए उनके चरणों में मस्तक झुकाकर इस शास्त्र की रीति का पालन करते हैं। प्रत्येक बड़ा-छोटा—यहाँ तक कि कन्या के माता-पिता भी—इस अवसर पर इन दोनों की चरण-वन्दना करना अपना अहोभाग्य समझते हैं। क्यों न हो इस संस्कार के समय वे दोनों साधारण मानव-प्राणी नहीं किन्तु लक्ष्मी एवं नारायण की युगल मूर्ति हैं, प्रकृति एवं पुरुष की सजीव प्रतिमा, विशुद्ध एवं निष्पाप ! तब क्यों न उनका अभिवादन किया जाए। इस प्रकार हम देखते हैं कि धान्यवर्षण उपरोक्त दोनों ही दृष्टिकोणों से विवाह का आवश्यक अंग है और उपस्थित समाज के मनोभावों के प्रदर्शन का सुन्दर तरीका है।

गृह-प्रवेश

बारात सकुशल वापिस लौट आई, नव-वधू ने पति के नगर में पदार्पण किया और उसके स्वागत का समारोह होने लगा। स्त्रियों ने मिलकर वधू को गाड़ी से उतारा और अपने हृदय में उमड़ने वाले आनन्द को गीतों में प्रकट करती हुई उसे घर ले चलीं। उसके शिर पर पीपल की हरी टहनी और नेता (बिलौनी की रस्सी) से युक्त जलपूर्ण कलश रखकर द्वार पर लाया जाता है जहाँ उसका स्वागत एव अभिनन्दन होता है। द्वार पर प्रथम स्थापित ऊँची चौकी पर खड़ा करके मां अपने वस्त्र के आंचल से उसे मिनती है। शिर पर स्थित कलश के जल को उसके ऊपर वारकर स्वयं पान करती है। कुछ जल पी

चुकने के बाद लाडला बेटा मां को सम्पूर्ण जल पोने से रोकता है। इस रस्म के अनन्तर दम्पति घर में प्रवेश करना ही चाहते हैं, किन्तु बहिनें आगे आकर उनका द्वार रोक लेती हैं। समुचित दक्षिणा मिलने पर उन्हें घर में प्रवेश करने की अनुमति मिलती है। यह सब प्रथाएँ यद्यपि आज देखने सुनने में हमें गोरखधन्धा-सी मालूम होती हैं, परन्तु विचार करने पर ज्ञात होता है कि किसी समय ये बड़े महत्त्व की रही होंगी।

वधू शिरस्थ कलश, स्वास्थ्य, प्रेम, समृद्धि और मर्यादा का का प्रतीक (Symbol) है। सभी परिजनों की यह कामना होती है कि नवागत वधू जो कि प्रथम बार इस घर में प्रवेश कर रही है अपने साथ स्वास्थ्य प्रेम आदि को लेकर आए। आक्सीजन या प्राणप्रद तत्त्वों से परिपूर्ण पीपल की हरी डाली स्वास्थ्य एवं बल की प्रतीक है। जल स्निग्ध पदार्थ है, विखरे हुए कणों को एक रूप कर देना उसका कार्य है। यह वधू के उस प्रेम का प्रतीक है जिसके द्वारा उसने विखरे परिवार को संयुक्त कर रखना है। नेत्ता, पारिवारिक समृद्धि का सूचक है, क्योंकि वह उसी घर में होता है जो दूध दही से भरपूर हो और वह पात्र जिसने प्रेमरूपी जल को धारण किया है मर्यादा का सूचक है। एक आदर्श भारतीय गृहस्थ को स्वास्थ्य, प्रेम, समृद्धि और मर्यादा इन्हीं चार वस्तुओं की आवश्यकता होती है, सो प्रतीकवाद का आश्रय लेकर परिजनादि, वधू से इन्हीं चार वस्तुओं की कामना करते हैं और वधू भी मस्तक पर इन्हें धारण कर प्रवेश करती हुई इस शुभकामना का अभिनन्दन करती है। इस अवसर पर वहिन द्वारा द्वारावरोध ननद और भौजाई के पारस्परिक परिचय का साधन है अनेकों स्त्रियों से मिली हुई ननद का इस रस्म द्वारा सबसे भिन्न रूप में परिचय हो जाता है तथा वह दाय भाग भी प्राप्त कर लेती है।

T

INDIA

100
No. 6
ELECTRIC
DETONATO
(COPPER)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri